समर्पण

(प्रभु भक्ति के अनूठे गीत)

(भाग-6)

लेखक

ललित साहनी

प्रकाशक

ललित साहनी

फ्लैट नं. 402, पाम व्यू, सरोजनी रोड,

सान्ताक्रूज (प.) मुम्बई-400054

फोन : 64511119, मो. 9892215385

समर्पण (**भाग-6**) *लेखक :* **ललित साहनी**

प्रथम भाग : 183 भजन
द्वितीय भाग : 139 भजन
तृतीय भाग : 62 भजन
चतुर्थ भाग : 144 भजन
पञ्चम भाग : 159 भजन
शष्टम भाग : 115 भजन

© लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य : ८० रुपये – Rs. 80

प्रकाशक : **ललित मोहन साहनी**
फ्लैट नं. 402, पाम व्यू, सरोजनी रोड,
सान्ताक्रूज़, (प.) मुम्बई-400054
फोन : 64511119 मो. 9892215385

संस्करण : सन् 2015 ई.
सृष्टि संवत : 1,96,08,53,115
विक्रमी संवत : 2071
दयानन्दाब्द : 191

मुद्रक : मेहता रवीन्द्र आर्य अध्यक्ष सरस्वती साहित्य संस्थान, दिल्ली द्वारा, क्विक ऑफसेट, दिल्ली से मुद्रित

अनुक्रम

धुन	नं.	शीर्षक	भजन	मंत्र	पृ.
		आभार	ललित मोहन साहनी		7
ज	1.	शक्तिशाली बन	हे आत्मन हे पूषे	शग्धिपूर्धि	9
ज	2.	वीरमाता	मेरे पुत्र शत्रु को बेधें	मम पुत्राः शत्रुहणो	10
जा	3.	विद्या ज्ञान का स्वरूप	वेद विद्या प्रभु की	वेद यस्त्रीणि	13
जा	4.	वह सर्वहितकारी है	निर्मल शुक्र प्रकाश	तच्चक्षुर्देवहितं	15
जा	5.	चार पुरुषार्थ	आदर्श मित्र प्रभु तू	चतुश्चिद्दमाना	16
जी	6.	धन तन वचन से यज्ञ करो	वेद धर्मा धर्मा धर्मा	यज्ञेन वर्धत	17
जु	7.	पंख खुले हैं	प्राण और अपान के	सहस्त्राह्रयं वि	18
जू	8.	यजमान की संतति	अग्निदेव उपास्य	इग्गमग्नेपुरुदंस	19
जो	9.	उठो ऐश्वर्य का मार्ग देखो	जन हो या हो जाति	उत्तिष्ठताव पश्य	21
झा	10.	तुम अनन्त हो	दीख रहा जो द्यौ	यद्दयावइन्द्रते	22
झा	11.	ऐश्वर्य की रक्षा	हे दीनबन्धु तुझसे	त्वं नश्चित्रऊँया	23
ठा	12.	मैं तुझे चाहता हूँ	भावदेभावदे (प्रभुजी)	आ ते वत्सोमनो	24
ड़ो	13.	उल्लासमय वातावरण	वसुधा है मेरी माता	इयंमेनाभिरिह	25
तं	14.	संज्ञान संगठन संघटन	तुम सदा मिल के चलो	संगच्छध्वं संवदध्वं	26
तं	15.	पाप पापी को लौटकर....	दुःख दुरित ईश्वर हरता	असद्भूम्या सम	27
तं	16.	शत्रु मित्र की पहचान	शत्रु मित्र पहचान और	के ते अग्नेरिपवे	28
तं	17.	यज्ञकर्ता का नाश नहीं	चञ्चल चञ्चल धन	नूचित्सध्रेषते	30
त	18.	वेदकर्ता	सारी स्तुतियों का पात्र	इन्द्रायसामगायत	32
त	19.	शरीर त्याग से रक्षा	तरस भरे मन के...	तमिन्नरो विह्वयन्ते	33
ता	20.	ज्ञानी पुरुष सब ओर...	होते हैं सब आश्चर्य	अतोविश्वान्यद्भु	34
ता	21.	विषम हवाएँ	चल रही चहुँ दिशी	इमा या ब्रह्मणस्पते	35
ता	22.	शुनः शेप की पुकार	पालन कर लूँ...	तदिन्नक्तं तद्दिवा	37
ति	23.	ओ३म् प्रतिष्ठित	आत्ममन्थन यज्ञ से	मनोजूतिर्जुषतामा	38
ति	24.	वन्देमात्रम्	गौरव गीत गाते	शिलाभूमिरश्मा	39
ति	25.	दुविधा में दोनों गए	दुविधा में दोनों गए	रेवद्वयोदधाथे	40
ति	26.	सूर्य का अविर्भाव	सद्गुण सिन्धु परम प्रभु	धीरासः पदं कवयो	42
ति	27.	मन्त्र की महिमा	मन्त्रों की है अद्भुत	हस्तेदधानोनृम्णा	43
ती	28.	अमरता	सुन्दर दृढ़ है इक नगरी	जुहुरे विचितयन्तो	44
ती	29.	दीर्घ जीवन का उपाय	ना जन्म ये अपना	जीवतां ज्योतिर	45
तुं	30.	भगवान प्यासे के लिये	प्यास से जीभ सूख	यथा पूर्वेभ्यो जरि	46
तु	31.	यज्ञमयी नौका	जग से प्रभु तरा	पृथक्प्रायन्प्रथमा	47
तु	32.	गणपति का आह्वान	हे इन्द्र तुम हो	निषुसीदगणपते	48
तु	33.	जय हो उसकी	इन्द्र विश्व सम्राट	महाँ इन्द्रः परश्च	49
तु	34.	मेरे भजन दूत हैं	भक्त तेरा हूँ...	वनीवानो मम दूतास	50
तु	35.	अन्तरवाणी	करे हित जो वाणी	शिवास्त एका	51
तु	36.	प्रभु कृपा द्वारा द्वेष से...	द्वेष प्रति द्वेष के कारण	प्राग्नये वाचमीरय	52

तु	37.	उसकी सब प्रशंसा करते...	आओ हम वैश्वानर	विश्वपर्ति यह्व	53
तु	38.	द्वीप की कथा	मेरी जान ऐसा गीत गा	प्रकाव्य मुशनेव	54
तु	39.	कोंपल फूटी	काले काले बादल	असाष्यंशुर्म	55
तु	40.	महिमावान परमेश्वर	हे परमेश्वर तू है महान	नहि नु ते महिमनः	56
तु	41.	घर की गौ महिमा	गौ भक्त बन के	स्वआदमेसुदुधा	57
तु	42.	भगवान ज्ञान का तारक	तुझे देखना है प्रभु	अग्निर्धियास	58
तु	43.	हृदय से तेरा चयन	मुझे चाहिये प्रीत तेरी	यस्त्वाहृदाकीरि	59
तू	44.	चित्त वृत्तियों का शोधक...	तू जो मेरी सुध लेगा	परां हि मे विमन्य	60
तू	45.	जो तुझे चाहते हैं वही तृप्त..	द्रीनबन्धु करुणाकर	ये चाकनन्त (2)	61
तू	46.	रसभरी ज्योति	तू निरागस चन्द्रमा है।	प्र न इन्दोमहे	62
तू	47.	हे सर्व दुःख छेत्ता	हे विधाता लक्ष्य के	पवस्व सोमदेव	63
तू	48.	विश्व साम्राज्ञी की वाणी	मैं सुखदायक अधीश्वरी	अहंराष्ट्री संगमनी	64
तू	49.	तप की महिमा	अङ्ग-अङ्ग में संग लगा	पवित्रं ते विततं	65
ते	50.	तू सचमुच अमर है	जग में जो भी है जन्मा	यद्वा प्रवृद्ध सत्पते	66
तो	51.	अजन्मा प्रजापति	ओ३म् ओ३म् ओ३म् ही	प्रजापतिश्चरति	67
तो	52.	प्राणपान का रथ	जागो जागो नींद से	अबोध्यग्निर्ज्म	68
तो	53.	उसके सुमति और...	हे प्रभु प्रेरक सुमति प्र	जन्मंजनमन्निहितो	69
त्या	54.	सब को भरते हो हमें...	हे इन्द्र भरो हृदय में प्रीत	गम्भीरां उदधी	70
थ	55.	मनीषा धेनु का दूध	परम विवेकी प्रभु ने	प्रमेविविक्काँअवि	71
द	56.	तेरे नाम को जपता हूँ	दयाकर करुणामय दातार	न ते गिरो अपि	73
द	57.	वरेण्य धन दो	धन दो वरेण्य ही सारे	यन्मन्यसेवरेण्य	74
द	58.	दिव्य सम्पत्ति	गीत तुम्हारा सोहे	परिद्युक्षः सनद्र	75
द	59.	भगवान की महिमा का...	जीव प्रकृति ईश्वर तीनों	ववक्षइन्द्रोअमित	77
दा	60.	सत्य का सूर्य	सत्यभाषण का ही व्रत	सामा सत्योक्ति	78
दि	61.	द्वेषी हमारी हिंसा न...	द्वेष भाव से बचो मन में	मा नः समस्य	79
दि	62.	सुनहरा चश्मा	मन में इक तरंग सी	पुनानः सोमधार	80
दि	63.	अश्वमेध	ओ३म् ओ३म् गायेजा	आ सोतापरिपिञ्च	81
दि	64.	प्राणों को कोई सुनता है	है विश्व इक वैचित्र्य	यद्धयान्तिमरूतः	82
दी	65.	कर्म करते जीवन बिता	ऐ आर्यो कर्म करो और	कुर्वन्नेवेहकर्माणि	83
दु	66.	अभय ज्योति	दे अभय ज्योति तू दे	न दक्षिणा विचि	84
दे	67.	एक ही	एक चन्द्रमा तारागण	एक एवाग्निर्बहुधा	85
दे	68.	श्रेष्ठ कर्म द्वारा अन्न व...	देवाधिदेव सविता	इषे त्वोर्जेत्वा वाय	86
दे	69.	विश्व कल्याण की कामना	कर सबकी कल्याण कामना	स्वास्तिमात्र उत	88
दे	70.	आओ वेदाध्यन करें	वेदविद्या का अध्ययन कर	वैश्वानरीं वर्चस	89
दे	71.	इन्द्र की देन बड़ी भद्र है	इन्द्र देव की देनों की	सत्यमिद्धाउत	90
दे	72.	महान बनो	आओ सुप्रणीते! आओ	उपक्षेतारस्तव	91
दे	73.	दौड़कर भगवान को...	कहाँ है स्वदेश अब मैंने	उपदेहंधनदाम	92
दो	74.	विश्व का एकमात्र राजा	जगतीतल में हैं भरे पड़े	महाँ असि महिष	93
द्वा	75.	वैश्वानर देव	मैं नहीं जानूँ जगत वस्त्र	सइ त्तन्तुंसवि	94
द्वा	76.	अपने पुरुषार्थ से कच्चों में	ज्ञानी होकर हिंसा त्यागें	तवकत्वातव तद्	95

ध	77. मधुमती वाणी	बोल वाणी मधुमती	याते जिह्वामधु	96
धा	78. ईर्ष्या नाश	बढ़ती देखी औरों की	ईर्ष्यायाघ्राजिं	97
धु	79. हे वरुण!	हे वरूण आओ तुम	इमं मे वरुण श्रुधी	98
धु	80. हम इन्द्र की डाल के...	इन्द्र दिव्यतम अतिबल	वयो न वृक्षं सुप	99
धु	81. आत्मा का सिंहनाद	अमर इन्द्रआत्मा विजयी	अहमिन्द्रो न परा	100
धु	82. मेरा नमस्कार स्वीकार करो	अग्निदेव आओ हृदय में	अयामि ते नम	101
नं	83. सरस्वती देवी	हे सरस्वती यज्ञधारक	चोदायित्री सुनृता	102
न	84. महान धन	गीतरूप भाव की भाषा	प्रगायताभ्यचमि	103
न	85. युद्ध से संसार संत्रस्त हो...	जग में बढ़ी कठिनाई	वृक्षे वृक्षे नियता	104
न	86. चमको हे उषा चमको	सौन्दर्य भरी उषा चमको	अस्मेइन्द्रोवरुणो	105
ना	87. आओ सोम प्रभु को भजें	चाँद चमकीला है सूरज में	तं सखायः पुरो	106
ना	88. प्रभु का सखित्व	है जो ईश्वर का सच्चा	तमित्सखित्व	108
ना	89. सबको बसाने वाले इन्द्र	वृषा प्रभु हैं वसु	वयमिन्द्र त्वायवो	109
ना	90. मैं तेरी स्तुति करुँगा	अमर अमृत तुम हो	स्तविष्यामि त्वा	110
नि	91. विद्या का नाश नहीं होता	जीवन का मार्ग बीहड़	न ता नशन्ति न	111
नि	92. वैश्वानर अग्नि का चयन	वसुवित प्यारा पिता	वैश्वानरं मनसाग्नि	113
नि	93. प्रभु के बुद्धियोग से...	कितना बुद्धिमान हो	यस्माद्दते न सिध्य	114
नि	94. सदा प्रसन्न रहें	क्या है लोगों की इच्छाएँ	विश्वदानी सुमनसः	115
नि	95. पवित्र यज्ञ	मन वाणी और इन्द्रिय	भद्रं कर्णेभिः श्रृणु	116
नि	96. तीन देवियाँ	इड़ा सरस्वती और मही	इळा सरस्वती मही	117
नि	97. सब काव्य वचन उसी...	बुद्धिमान कवि प्रभु ने	अस्मा इत् काव्यं	118
नि	98. मैं भगवान से कीर्ति...	यजन करके तुम्हें ध्याऊँ	इदं कवेरादित्यस्य	119
नि	99. सत्य को समझें	सदा मन में सत्य को	न वा उ सोमो	121
नि	100. कब दर्शन करेंगे	महाशक्ति दर्शनवाले	कदाक्षत्र श्रियं नर	122
नि	101. हमारे विविध पाप	जगा दे बना दे शुद्ध	अर्यम्यं वरुण मित्र्यं	123
नी	102. अपांक्तेय	सकल ब्रह्माण्ड के रक्षक	प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः	124
नी	103. हमें निन्दा और पाप...	हे मेरे सोम अंह से	उरुष्याणो मा परा	126
नी	104. रात्री देवी का स्वागत	चिरयुवती आई	आ प्रागाद्भद्रायुव	127
नी	105. हमें पापेच्छुकों और...	पुण्य की राह पे हमें	उरुष्याणो मा परा	128
नी	106. तू अकेला ही	तेरे गुण कीर्ति का	सुदक्षोदक्षैः क्रतुना	129
नी	107. अमोघ शक्तियुक्त सत्यधारी	द्वन्द्व प्रति द्वन्द्व	अहमेताञ्छाश्चसतो	130
नी	108. रुद्र की छाया में	अधिकरण मिले तेरा	उन्माममन्द वृष	131
नी	109. तेरे प्रति प्रणत	लगते हो तुम प्रभु अपने	अभित्वाशूरनोनु	132
नी	110. उसके प्रति प्रमाद ना करो	दास हैं हम तुम दाश्वान	तदित समानमाशाते	133
नी	111. अतिथिवत पूजनीय प्रभु	हे प्रभु प्रेरणा दो	प्रेष्ठं वो अतिथिं	134
नी	112. तू जनों की ज्योति है	अग्निस्वरूप हे परमेश्वर	नित्वामग्ने मनुर्ध	135
ने	113. असुर संहारक इन्द	करले इन्द्र सबका भला	अहिस्तायदपदी	136
ने	114. इन्द्र को सोमरस का...	भीने भीने नयन मेरे	य उशता मनसा	137
नै	115. सत्य की खोज	बहने दूँ बहने दूँ सत्य	सुविज्ञानं चिकितुषे	139

आभार

हर मंगल कार्य की प्रेरणा और उसकी सफलता में परमेश्वर का साथ रहता है, इसलिए हर सुकार्य करते समय प्रभु का स्मरण एवं उसका धन्यवाद सदैव करते रहना चाहिए।

प्रेरणा शक्ति, परमेश्वर द्वारा किसी न किसी माध्यम से प्रसारित होती रहती है। इस संदर्भ में परमेश्वर की कृपा से मेरे हाथों से रचित **समर्पण-भाग 2 एवं भाग 6** भजन पुस्तक को छपवाने का श्रेय आचार्य वाचोनिधि जी को जाता है। आशीर्वाद के रूप में आचार्य जी ने जो रकम मुझे दी वह इस पुस्तक को छपवाने के लिए पर्याप्त है।

हर वर्ष मई से जून मास में मैं आर्य समाज गाँधी धाम के जीवन प्रभात संस्था में संस्कारित बच्चों को वैदिक-शास्त्रीय संगीत, जो वेद मंत्रों पर आधारित है, जिसमें 15 वर्षों में अब तक 1287 भजन लिखे हैं जिन्हें अलग-अलग संस्थाओं में सिखाने के लिए कृतसंकल्प हूँ, सिखा रहा हूँ। जीवन-प्रभात के बच्चों में 25 छोटी बालिकाएँ 10 बालक 16 बड़ी बालिकाएँ ग्रीष्मावकाश में सुबह 2 घंटे एवं शाम 2 घंटे देकर सीख रही हैं, बालिकाएँ मेधावी होने से 162 भजन सीख चुकी हैं। आचार्य जी ने बहुत ही सुन्दर संगीत कक्ष बनवाया है जिसमें हर प्रकार के वाद्य यंत्र मौजूद हैं।

मैं आचार्य जी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझ पर पूर्ण विश्वास किया और मुझे बालक एवं बालिकाओं को सिखाने का सुअवसर प्रदान किया और अब वैदिक-मंत्रों के भजनों को छपवाने का दान दिया। ये पुस्तक आचार्य जी के सौजन्य से छप रही है।

आचार्य जी इस तरह के कई आध्यात्मिक यज्ञ कर रहे हैं। अगली योजना जिनमें से सभी बच्चे उत्तीर्ण होकर अपने पाँवों पर खड़े हो सकें। आचार्य जी 11 एकड़ भूमि ख़रीद कर वर्कशॉप तैयार करवाने के लिए रात-दिन लगे हुए हैं। ईश्वर उन्हें और उनके सहयोगियों को बल देवें ये हमारी ओर से प्रार्थना है। उनके साथ गाँधीधाम आर्यसमाज के प्रधान पुरुषोत्तम भाई एवं सभी अधिकारी महानुभाव जी-जान से कार्यरत हैं। जीवन प्रभात सेक्टर-7 में मन्जू

जी एवं करुणेश जी बच्चों की खूब देखभाल कर रही हैं और संगीत की रुचि बढ़ाने में उनका भी योगदान है।

आर्य समाज सान्ताक्रूज (मुम्बई) में भी वर्ष भर संगीत कक्षा लगती है जिसकी रकम इन भजन की पुस्तकों में लगती है इसके अलावा घरों में भी संगीत शिक्षा देने का अवसर मिलता है जिनमें छोटी बालिकाएँ सीखती हैं जिनमें प्रथमा जी को सुपुत्री अमीष्का का नाम उल्लेखनीय है।

आगे चलकर विचार है कि यदि समय बचता है तो विभिन्न गुरुकुलों में वैदिक संगीत का प्रशिक्षण आरम्भ करूँ।

भजनों की शिक्षा से पहले–Voice Culture (सुरीलेपन का विज्ञान) के द्वारा सुरीले गायकों को तैयार करूँ।

इसी अप्रैल मास 2015 से गाँधीधाम (गुजरात) के संगीत ऐच्छिक लोगों को Voice Culture के माध्यम से विधिवत संगीत शिक्षा प्रारम्भ कर रहा हूँ।

आचार्य ओशो, रजनीश जी ने स्वयं लिखा है 'ध्यान का सर्वोत्तम मार्ग संगीत है' जिसका वेदों में भी वर्णन है, जिसे श्री ज्ञानेन्द्र कुमार ने एक लेख लिखा जिसे मैंने समर्पण भाग-५ के अन्तिम पृष्ठ पर छापा है। यह विज्ञान परम पिता परमात्मा में पहले से ही था इसलिए उन्होंने सामवेद की रसमय रचना की। जो ऋषियों द्वारा हम तक पहुँचा।

आप सबका शुभचिन्तक!

–ललित मोहन साहनी
मुम्बई

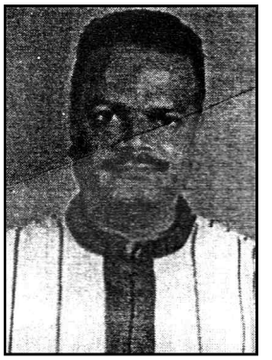

आचार्य वाचोनिधि आर्य

गाँधीधाम एवं पांडेचरी **'जीवन प्रभात'** के प्रधानाचार्य श्री वाचोनिधि आर्य का मैं हृदय की गहराइयों से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने संस्था **'जीवन प्रभात'** की 25 छोटी बालिकाओं तथा 16 किशोरियों को और 10 बच्चों को वैदिक मंत्रों पर आधारित भक्तिप्रद भजन (शास्त्रीय संगीत) वाद्य-यंत्रों से सिखाने का दायित्व मुझे प्रदान किया है। अब तक ६ वर्ष हो चुके हैं।

केवल इतना ही नहीं परन्तु मेरे द्वारा रचित सैंकड़ो भजन वाली (तीन भागों में) पुस्तक **'समर्पण'** (प्रभु-भक्ति के अनूठे गीत) छापने के लिए आर्थिक सहयोग देकर मेरा उत्साहवर्धन किया है इसके लिए मैं उनका सदा आभारी रहूँगा।

–ललित मोहन साहनी

नवसंवत्सर २०६८ व
138वां आर्यसमाज स्थापना दिवस
4 अप्रैल 2011 ई.

फ्लैट नं. 402, पॉम व्यू,
सरोजिनी रोड, सांताक्रूज (प.)
मुम्बई-54, फोन : 9892215385

1. शक्तिशाली बन

शग्धि पूधिपूर्धि प्रयांसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूर्षन्निह क्रतुं विदः॥

ऋ. १.४२.६

तर्ज : *जय अम्बे जगदम्बे सकला ची माता (गोड ना बिछीन)*

हे आत्मन्! हे पूषे! पुष्टिप्रदाता (२)
प्रजारूप मन बुद्धि इन्द्रियों का ज्ञाता ॥

परिपुष्ट यदि तुम न होगे स्वयं
तो सारे साम्राज्य का होगा पतन (२)
तुम अपने नाम को सार्थक करो (२)
इन सप्तऋषियों के बनो विधाता (२) ॥हे आत्मन्

मायावी कामादि शत्रु जो आवें (२)
संघर्षों से उनको क्यों न हरायें?(२)
पूर्णिमा के चन्द्र जैसे पूर्ण हो जाओ (२)
जानो विकास तुम उसकी कला का (२) ॥हे आत्मन्

करके प्रयास समृद्धि को पाओ (२)
दिव्यगुणों का साम्राज्य बढ़ाओ (२)
स्वयं सफलता न द्वार पे आती (२)
जागरुकता जगाये मन की प्रत्याशा (२) ॥हे आत्मन्

संशय कुण्ठाओं में मन ना लगाओ (२)
जागे प्रखरता शत्रुओं को हराओ (२)
विजयध्वज निज प्रतिभा से फहराओ (२)
निर्भय चुनौति से शत्रु भी जाता॥ (२) ॥हे आत्मन्

उदर पूर्ति इस देह को कम पड़ेगी (२)
भूख यथार्थ अध्यात्म से भरेगी (२)
व्रतपालन यज्ञ सत्यता स्वाध्याय (२)
त्याग शुचिता अहिंसा की है पिपासा (२) ॥हे आत्मन्

सञ्चित करो ऐसे अमृत पदार्थ (२)
मन हो तुम्हारा पर सुख हो परार्थ (२)

हों देह-वासी, कर्तव्यों से नाता (२)
तो सत्य की ले लो कर में पताका (२) ॥हे आत्मन्

हे आत्मन् बन जाओ तुम सच्चे पूषा (२)
खुद जागो ऐसे जैसे के उषा (२)
तुम्हें प्रेरणा दे रही वेदमाता (२)
ऋचा-मन्त्र गाओ मधु-स्वर-प्रगाता (२) ॥हे आत्मन्

(पुष्टि) पोषण, (कुण्ठा) मंद बुद्धि, सुस्त, (पतन) गिरावट, (परार्थ) दूसरों के हित के लिये, (प्रत्याशा) अपेक्षा, (प्रगाता) अच्छा गाने वाला

2. वीर माता

(1) मम पुत्राः शत्रुहणो ऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः

ऋ. १०.१५९.३

(2) अवीरामिव मामयं शरारुभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरणी न्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः

ऋ. १०.८६.९

(3) ब्रह्मचर्येण कन्याꣳ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान्ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥ *अथर्व ११.५.१८*

तर्जः *जय शारदे राजेश्वरी*

मेरे पुत्र शत्रु को बेधें और पुत्रियाँ हैं तेजस्विनी।
पति है मेरे कीर्तिमान, वीराङ्गना मैं राजेश्वरी॥ मेरे पुत्र॥

उठे जो टेढ़ी आँख मेरी तरफ वो मुँह की खाकर लौटते
सर उनके तोड़ूँ मैं हूँ सबल, गर अत्याचारी मुँह खोलते
पुरुषों की भाँति मुझमें भी तो है, अदभ्य वीरता भरी (2)॥मेरे पुत्र॥

विद्याओं में मैं हूँ सरस्वती आदर्श धनों की हूँ लक्ष्मी
दुर्गा सी हूँ वीराङ्गना सौन्दर्य में हूँ आदर्श रति
देवर ननद और सास ससुर से पाती हूँ समादर अति
लगता नहीं फिर घर नया, घर में छिड़े मधुररागिनी (2) ॥मेरे पुत्र॥

अबला न कह देना मुझे वीरों सी शक्ति भरी प्रचुर
मैं हूँ स्तोमपृष्ठा वेद-नारी वेदों की शिक्षा से हूँ पूर
कर्त्तव्य-कर्म में यम नियम दिनचर्या करती हूँ सही (2) ॥मेरे पुत्र॥

ऋषि मन्त्र-दृष्टा हैं वहाँ स्त्रियाँ मन्त्रार्थों की हैं सुदर्शना
ऋषिकाओं सा सम्मान उनका वो है पूर्णज्ञान की कर्मणा
वेदाध्ययन वाले ही जानें इन ऋषिकाओं की कृति (2) ॥मेरे पुत्र॥

विश्ववारा रोमशा लोपामुद्रा सरमा व श्रद्धा
ज्ञानवती, ऋषिकायें ये थीं, भरपूर जिनमें भरी प्रज्ञा
अबला इन्हें कैसे कहें, जिन्हें मिलते ब्रह्मचारी पति (2) ॥मेरे पुत्र॥

ज्ञान प्रेम युद्ध की ध्वजायें, वीर फहराया करें
आत्मवत् शक्ति अलौकिक, इन्द्र परमात्मा भरे
ना दरिद्र न हीन तुच्छ कोई, ये हैं सबला सत्यव्रती (2) ॥मेरे पुत्र॥

निज शक्ति में रहे आस्था विश्वासमय हो वीरता
आभास हो बल ज्ञान का ना डर हो आधिव्याधि का
हों शक्तियाँ निश्चात्मक मनोरथ हो उच्च सर्वोपरि (2) ॥मेरे पुत्र॥

है अकाल मानवों का जो आज इसे दूर कर सकें नारियाँ
सन्तानें राष्ट्र की रोगमुक्त, करें दूर नारी बिमारियाँ
नारी हैं श्रद्धा आशावाद की जो हैं त्यागमूर्ति तपस्विनी (2) ॥मेरे पुत्र॥

जैसे है मूक ये प्रकृति फलफूल धान्य उगा रही,
तदर्थ सेवा साधना इन मूक-नारियों की सर्वोपरि,
चुपचाप अदम्य ये साहसी करे स्वर्ग का निर्माण भी (2) ॥मेरे पुत्र॥

मातृरूप में नारियाँ करती हें सार सम्भाल भी
पति पुत्र पुत्री को लक्ष्य से गिरने नहीं देती कभी
जी जान से रहें सेविका वाणी में जैसे गुणनिधि (2) ॥मेरे पुत्र॥

नारी तो है श्रद्धा समज्ञा स्नेहों से पूरित माधुरी
अतृप्त जीवनों की है तृप्ति असन्तुष्टों की संतुष्टि
स्त्रोत अमृत का बहाती वही मातृ अमृता वही (2) ॥मेरे पुत्र॥

नारी के अस्तित्व को कहते थे ऋषि दयानन्द महान
पूज्या अनिन्दनीय है नारी जन्मना है नरों की खान
जो चलातीं गर्भ में विद्यालय जिन्हें कहते हम विद्यावती (2) ॥मेरे पुत्र॥

जन्में कई सुभद्राओं ने वीर अभिमन्यु से पूत
कभी वक्त आये तो झाँसी बनकर जातीं संग्रामों में कूद
उर्मिला दुर्गा सीता क्या सबलाओं की श्रेणी सही? (2) ॥मेरे पुत्र॥

वीर माता के स्तनों का जिस शिशु ने किया है स्पर्श
उस शिशु ने है सम्भाला जीवन का उत्कर्ष, आदर्श
सन्नारि कटुवचन क्या बोले जिसमें वैर व द्वेष नहीं (2) ॥मेरे पुत्र॥

समझ लो वीराङ्गनाओं अपनी शक्ति का स्वरूप
तुम अमरशक्ति से कर दो कोना कोना जागरूक
प्रेम वीरता ओर दया की तुम दिखाना सुकृति (2) ॥मेरे पुत्र॥

पृथ्वी के इस वदन कमल पे फैले तेरा मधु-सुहास्य
जिसपे है अवतार तेरा जो है श्रद्धास्पद उपास्य
मानो माते शारदा से धन्य हो गई धरणि (2) ॥मेरे पुत्र॥

माँ का रत्न था भगतसिंह और कैसी माँ विद्यावती
हठ सिखाई वीरता की माँ बनीं वे देश की
पति देवर भी थे समर्पित देश सेवा के प्रति (2) ॥मेरे पुत्र॥

ऐसे ही बिस्मिल की माँ थी देश कार्यों में लगी
देशभक्ति का साहित्य पुत्र को देती रही
प्रेरणा थी माँ, गुरु थे सोमदेव सरस्वती (2) ॥मेरे पुत्र॥

नारी भेंट है प्यारे प्रभु की स्वर्ग सा उपहार है
काँटों को जो फूल बनाती शक्ति का भण्डार है
वेद की नारी है सबला नयनों की अद्‌भुत ज्योति (12) ॥मेरे पुत्र॥

(जागरुक) सजग (सुहास्य) मधुर मुस्कान (वीराङ्गना) वीर स्त्री (राजेश्वरी) रानियों में श्रेष्ठ, (अदम्य) प्रबल, (रति) शोभा, (अबला) दुर्बल स्त्री, (सबला) बलवती स्त्री, (प्रचुर) बहुत, (दिनचर्या) दिनभर करने के कार्य, (मन्त्रदृष्टा) मन्त्र का साक्षात्कार करने वाले, (सुदर्शन) भली प्रकार देखने वाली, (कृति) कार्य (प्रज्ञा) तीक्ष्ण बुद्धि, (अदभ्र) आपार, (गुणानिधि) गुणों का खज़ाना, (समज्ञा) कीर्ति, यश, (उत्कर्ष) समृद्धि, (जन्मना) जन्म देने वाली

3. विद्या ज्ञान का स्वरूप और महत्त्व

वेद॒ यस्त्रीणि॑ वि॒दथा॑न्येषा दे॒वाना॒ं जन्म॑ सनु॒तरा च विप्रः॑।
ऋ॒जु मर्ते॑षु दृजि॒ना च॒ पश्य॑न्न॒भि चष्टे॒ सूरो अ॒र्य एवा॒न ॥*ऋ. ६.५१.२*

तर्जः *जादू कर गए किसी के*

वेद विद्या है प्रभु की महिमा।
वेदों के संग रहना सही॥

विद्यारूपी जन्म को]2
जो जाने इस मर्म को
देह-आत्मा का बल पाये
वेदों के संग रहना सही॥ —वेद विद्या—

ज्ञान कर्म उपासना]2
वेदों की है धारणा
करे प्राप्त स्वामी बन जाए
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

विद्याओं में हित मानव का]2
विद्या-जन्म में है सार्थकता
प्राप्त करें इससे सद्बुद्धि
सत्य विद्या की पावें वृष्टि —वेद विद्या—

विद्युत के सम पायें बुद्धि (२)
आत्मा सुधी बन जाएँ
वेदों के संग रहना सही॥ —वेद विद्या—

माता-पिता से प्रथम जनम]2
आचार्यों से दूजा जनम
पाके सुखदाता हो जाए
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

स्त्री पुरुष सन्तान देते]2
अध्यापक उपदेशक वैसे

विद्वान उत्पन्न कराये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

विद्या जनम की पात्रता]2
विद्वानों से मित्रता
अज्ञानी भी ज्ञान पाये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

पुत्र के हैं माता-पिता]2
वो आचार्य ओर विद्या
पुत्र को द्विज ही बनाये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

आचार्यों से विद्या प्राप्ति]2
आठवें वर्ष से हो जाती
चतुर्फल द्विज को दिलाये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

प्राप्त करके दूजा जनम]2
करता है अमोध करम
सार्थक फल नित पाये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

विद्या सुशिक्षित उत्तम मन]2
पहले जन्म से भी उत्तम
उत्तम सोपान पे चढ़ाये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

विद्या और आचार्य तो]2
बने हुए आर्य को
द्विज विद्वान बनाये
वेदों के संग रहना सही —वेद विद्या—

(अमोघ) सार्थक, (सोपान) सीढ़ी (चतुर्फल) चार फल, (सुधी) बुद्धिमान, (चतुर्फल) धर्म अर्थ काम मोक्ष, चारफल

4. वह सर्वहितकारी है

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतंशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।

—यजु. ३६/२४, ऋ. ७.६६.१६

तर्जः *जाने जग सखी मैं ही न जानूँ*

निर्मल, शुक्र, प्रकाश का हुआ, पृथ्वी पर अवतान,
दर्शन-शक्ति मिली जगत को, प्रेरक प्रभु हैं महान (हमारे) ॥निर्मल॥

है संसार की आँख ये भानु (2) इसे देवहितकारी मानूँ
परम विशुद्ध ये चक्षु अनादि, हितकर्ता, दुःखहर्ता जानूँ
यज्ञिय देव महान (हमारे) प्रेरक प्रभु हैं महान ॥निर्मल॥

सूर्य को देखें सौ वर्षों तक, जीवन रहे विशुद्ध अमोलक
मन की आँखों से अनुभव लें, दिव्य सूर्य से प्राण लें ओजस
मृत्युञ्जय हो प्राण ! (2) (हमारे) प्रेरक प्रभु हैं महान ॥निर्मल॥

आँख जगत की सबको देखे, शुद्ध आचरण हरदम सीखें
देवचक्षु अध्यक्ष हमारा,(2) दिव्य आचरण जिसमें दीखे,
सुपथ चले अविराम (हमारे) प्रेरक प्रभु हैं महान ॥निर्मल॥

देखें सुनें शत वर्ष से आगे, करें प्रवचन जीते जागे,
हाथ न फैले किसके आगे, (2) स्वावलम्बी हों सभी इरादे
हो जीवन कल्याण (हमारे) प्रेरक प्रभु हैं महान ॥निर्मल॥

(शुक्र) अग्नि, शक्ति, बल, सामर्थ्य, (अवतान) उतरना, (भानु) सूर्य, (ओजस) तेज, बल, प्रकाश, चमक। (देवचक्षु) दिव्य दृष्टि, देवताओं की दृष्टि। (अध्यक्ष) स्वामी, नायक, मुखिया। (अविराम) निरन्तर। (स्वावलम्बी) किसी दूसरे पर आश्रित न होने वाला, अपने पाँव पर खड़ा होने वाला। (इरादे) इच्छायें, अभिप्राय।

5. चार पुरुषार्थ

चतुरश्चिद्दमानाद्विभीयादा निधातोः। न दूरुक्ताय स्पृहयेत्॥

ऋ. १.४१.६

तर्जः *जाशील कोठे मूली तू*

आदर्श मित्र प्रभु तू
पाप-निवारक वरुण तू ॥आदर्श॥

आततायी से मानव ना डरे]2
पापी से केवल संघर्ष करे
जो कि धार्मिक रहे हम उसी से डरें
जब तलक आत्मा बन ना जाये गरु ॥आदर्श॥

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, उन्नति-सोपान]2
चारों ही कहलाते धर्म के प्राण
मन में हो संङ्कल्प हो इन्द्रियाँ निश्चल हों
खुलते रहें आत्मा के ज्ञान-चक्षु॥ ॥आदर्श॥

ना दुर्वचनों की इच्छा करें]2
योगी महात्माओं से प्रेरित रहें
और सान्निध्य में बुद्धि-प्रबुद्ध करें(2)
सुवचन ही कहें, ना के बोलें कटु ॥ ॥आदर्श॥

हे प्रभु! मित्रता का आदर्श तू]2
सबके जीवन का भी उत्कर्ष तू
चारों पुरुषार्थ को विद्या-परमार्थ से (2)
धार हृदयों में निर्मित हुए सुक्रतु॥ ॥आदर्श॥

(आततायी) यातना देने वाला, (गरु) प्रतिष्ठित, (सोपान) सीढ़ी, (निश्चल) अडिग, अटल। (दुर्वचन) बुरे बोल। (प्रबुद्ध) जागरूक, जागृत, चौकस, ज्ञानवान। (कटु) कड़वा। (उत्कर्ष) उन्नति, बढ़ना, ऊँचे उठना। (परमार्थ) उच्चतम ध्येय, सूक्ष्म-सत्य। सुक्रतु पवित्र कर्म करने वाला, संकल्पित कर्म।

6. धन तन वचन से यज्ञ करो

य॒ज्ञेन॑ वर्धत जा॒तवे॑दसम॒ग्निं य॑जध्वं ह॒विषा॑ तना॑ गि॒रा।
स॒मि॒धा॒नं सु॑प्र॒यसं॒ स्व॑र्णरं द्यु॒क्षं होतारं वृ॒जने॑षु धू॒र्षद॑म ॥ *ऋ. २.२.१*

तर्जः ***जीव भरला भरला भरला***

वेद धर्मा धर्मा धर्मा
यज्ञ करना, करना, करना

बढ़ाना यज्ञाग्नि को
पाप अत्याचार से डरना॥
॥वेद धर्मा धर्मा धर्मा॥

यज्ञ आत्मसमर्पण है भाई]2
प्रभु-महिमा की कर लो बढ़ाई]
करो आस्तिकता की ही अगवाई (2)
॥वेद धर्मा धर्मा धर्मा॥

दस्यु नास्तिक को या अमन्तु को]2
यज्ञ-प्रीति से आस्तिक बनाते रहो]
पाप अन्याय है तम की खाई (2)॥
॥वेद धर्मा धर्मा धर्मा ॥

वाणी,-सन्तान,-हवि, तन, के यज्ञ]2
करते परोपकारी प्रथिप्रज्ञ]
मोहधन को छोड़ो पहले भाई
॥वेद धर्मा धर्मा धर्मा ॥

त्याग के भाव इसमें प्रधान]2
देव-लक्ष्य बना के करो दान]
वस्त्र धन अन्न देना है खराई
॥वेद धर्मा धर्मा धर्मा ॥

त्याग वाणी का बहुत दुष्कर]2
निन्दा गाली ही बजाते अनगढ़]
ये त्रियाग हैं खरे खराई

(दस्यु) असुर, अनार्य। (दुष्कर) जिसको करना कठिन हो, सुसाध्य। (अमन्तु) नास्तिक। (अनगढ़) बेडोल भद्दा। (तम) अज्ञान, अन्धकार। (त्रियाग) 3 प्रकार के यज्ञ, 1. धन देना, 2. धर्म प्रचार, 3. विद्या प्रचार। (पथिप्रज्ञ) पथ का जानकार, विद्वान। (खराई) खरापन।

7. पंख खुले हैं

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवानत्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन्याति भुवनानि विश्वा॥

अथर्व. १०.८.१८

तर्ज: ***जुनुं ते थयुं देवर मारो हंस लो***

प्राण और अपान के पंखों से रहा है उड़ता
दिन बीते अनगिन मगर हंस तो रहा है उड़ता

रात-दिवस ये पंछी, निज अभीष्ट खोजता
कामनाएँ चलतीं आगे, पीछे दौड़ता
॥प्राण॥

आयास करता हंस, आपाद के लिये
सुख-प्राप्ति के अनुक्रम से, पा रहा योग्यता
॥प्राण॥

ज्ञान-कर्म के मार्ग से, स्वर्ग धाम खोजता
नये नये उत्कर्षों में, निज मन दौड़ता
॥प्राण॥

दूर तक न दीखे किनारा, यात्रा है अनन्त
क्या करे? के पाये स्वर्ग, दिन-रात सोचता
॥प्राण॥

हृदय-बसे देवगुणों को लिये लिये उड़ रहा
नाना देश, लोक, योनियों, भुवनों को देखता
॥प्राण॥

जा पहुँच, हंस, लक्ष्य पे, जहाँ सारे देश बसे
अब समेट निज पंखों को, वहीं स्वर्ग ओ३म का
॥प्राण॥

(प्राण) अन्दर जाने वाला श्वास, (अपान) बाहर निकलनेवाला श्वास, (अभीष्ट) चाहा, इच्छित, प्रिय, रुचिर। (आयास) अतियत्न, बहुत मेहनत। (आपाद) फल का लाभ। (अनुक्रम) तरतीब, तरीका, सिलसिला। (उत्कर्ष) उन्नति। (भुवन) संसार।(स्वर्ग) देवलोक, प्रकाश की ओर जाने वाला।

8. यजमान की सन्तति

इळामग्ने पुरुदंस सुनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनंया विजावाग्ने सा ते सुमांतर्भूत्वस्मे॥ *ऋ. ३.१.२३*

तर्जः *जू मिलै मिलामळयिल*

अग्नि देव! उपास्य मेरे जीवन यज्ञ सफल कर दे (2)
मुझे गौओं ऐसी दुधारी दे (2) मेरे यज्ञ को विस्तृत कर दे॥

अन्न चाहूँ, राज्य चाहूँ, विद्या चाहूँ और धन,
दूध यदि ये गौओं न दें, तब तलक मैं हूँ निर्धन,
गौओं दूग्ध तब देंगी हो जाऊँ जब तेरे अर्पण,
जीवन यज्ञ बने ना सम्भव जब तलक तू कृपा न करे ॥अग्निदेव॥

चाहे अन्न से भूख मिटती, पर संतुष्टि है कहाँ?
वृद्ध हो जाता मानव, तृष्णा तो रहती जवाँ
आखिर जीवन का लक्ष्य तो केवल खाना पीना नहीं
अन्न का दूध तभी सार्थक यदि गौरव इस जीवन में मिले ॥अग्निदेव॥

पृथिवी वाणी अन्न इड़ा हैं कामधेनु जो है सबकी।
किन्तु यदि ये दूध ना देवे होगी कैसे सन्तुष्टि
होती है संतुष्टि केवल, यज्ञानुष्ठान से ही।
मन के विस्तार से, संतुष्टि याजक को मिले ॥अग्निदेव॥

स्वार्थभावना के बिन मानव कार्य करे तो कैसे?
किसी को यश या किसी को पद या किसी को चाहिये पैसे
मिलता है सब कुछ स्वार्थ से, आनन्द मिल ना ऐसे
यदि स्वार्थ का स्थान यज्ञ ले ले, तो हृदय का आनन्द खिलता रहे
॥अग्निदेव॥

देश विदेश की नहीं दीवारें, और मिटा है काल का भेद,
ऐसा है यजमान ईश्वर, यज्ञस्वरूप जो प्रथित विशेष,
कर्म की पुरुदंस धारा है इडा-दूध का बहता केत,
प्रज्वलित रखता विश्वव्यापक अग्नि के हैं ऋत्विक ऋतेश ॥अग्निदेव॥

लक्ष्य यही संतानोत्पत्ति का, तीनों कालों का ऋण चुके
भूत, भविष्य वर्तमान में, मानवजाति उन्नत रहे।
उत्तम संतानों का जनक विश्व-याग यशील करता रहे
ऋषि देवों पितरों का भी ऋण, यज्ञकर्म से चुकता रहे ॥अग्निदेव॥

हे अग्निदेव! तुम्हीं हमारे यज्ञ-याग के प्रेरक हो।
तुम्हीं आराध्य हो तुम्हीं उपास्य हो, शाश्वत संस्कृति साधक हो।
यही संस्कृति जननी बनकर संतति का उपकार करे
जीवन-धेनु दूग्ध-यज्ञ से मानव दुःख का त्राण करे ॥अग्निदेव॥

(इड़ा) विद्या, धेनुरूपी (कामधेनू) सब इच्छायें पूरी करने वाली। (प्रथित) प्रसिद्ध ।(पुरुदंस) अधिक से अधिक यज्ञ संपादन करने वाली। (ऋत्विक) यज्ञ कराने वाला। (ऋतेश) परमेश्वर। (त्राण) रक्षा। (यशील) कीर्तिमान, यशस्वी।

9. उठो! ऐश्वर्य का मार्ग देखो

उत्तिष्ठ॒ताव॑ पश्यतेन्द्र॑स्य भागमृत्वियम।
यदि श्रातो जुहोत॑न यद्यश्रातो मम॒त्तन॑ ॥

ऋ. १०.१७६.१ अथर्व. ७.७५.१

तर्जः *जोखिला बिगराती ऐतुलालागें*

जन हो या जाति, मिल बाँट के उठो
लाभ हानि जो भी आती, कदम सजग रखो
॥जन हो॥

वेद का ये उपदेश रहे समाज समृद्ध
हरे भरे हों खेत धान्य-धन से हों वृद्ध
ना कोई हो अवनत होवे सब ही उन्नत
ना किसी का भाग लूटो॥
॥जन हो॥

जैसी जिसकी कमाई, वैसी करे भरपाई
अच्छा बुरा है जो भाई, राह अपनी खुद बनाई
घटा-बढ़ी करने का, या कर देना बुराई
ना अधिकार किसी को॥
॥जन हो॥

होम दो पके हुऐ को, कच्चे में मस्त हो जाओ
कच्चे पे दुःख ना मनाओ, पक्के पे अधिकार ना हो
ऋत्विज भाग देवे केवल,
सुख-शान्ति हे मनुष्यो!॥
॥जन हो॥

पाओ तो कह दो 'इदं न मम' बलिहारी बन जाओ,
जिसका लिया है दे दो उसी को देकर मस्ती पाओ,
वेद दिलाता है शान्त भी रखता
वेद की भाषा सीखो॥

(ऋत्विज) पुरोहित, वेद मंत्रों द्वारा यज्ञ करने वाला, (वृद्ध) सम्पन्न, बढ़ा हुआ, (अवनत) गिरा हुआ, झुका हुआ, (होम देना) समर्पण करना, (इदं न मम) ये मेरा नहीं है।

10 तुम अनन्त हो

यद्द्यावं इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥

सा. पू २७८, सा. उ. ८६२
ऋ. ८.७०.५, अथर्व. २०/८१/१, २०.६२.२०

तर्जः *झाड़ा खाली दत्त सावळया*

दीख रहा जो द्यौ विशाल है और पृथ्वियाँ कई
तेरी अनन्तता इससे भी आगे कही ना किसी से गई
दीख रहा...
जीव अनगिन अनन्य सृष्टियाँ, (2) कौन भला गिन सका है इनको? (2)
ये सब मिलकर भी चैतन्य का पार पा सके नहीं॥
तेरी अनन्तता...
हे बज्रिन् असीम अनन्त, (2) तू सब सामर्थ्यों का है धनी (2)
एक सूर्य क्या ऐसे सहस्त्रों, तेरी ज्योति सम नहीं॥
तेरी अनन्तता...
एक जगत क्या ऐसे अनन्तों (2) उत्पन्न और मिटते दिखे(2)
काल अनन्तों आये गये तेरी, आयु न मापी गई॥
तेरी अनन्तता...
द्यावा पृथ्वी भूमियाँ अम्बर(2)और ब्रह्माण्ड जो तेरे सहारे (2)
तेरी विशालता और गम्भीरता, सदा सर्वथा रही॥
तेरी अनन्तता...
जीव भला हम क्षुद्रातिक्षुद्र अल्प ज्ञान से क्या-क्या समझें।
केवल कल्पना मात्र भी कर लें, कुण्ठित फिर भी मति॥
तेरी अनन्तता...
हे महेन्द्र! सचमुच अनन्त हो इससे अधिक अल्पज्ञ क्या कहे?
कल्पना से हो परे अगोचर, वाणियाँ सब चुप रहीं॥
तेरी अनन्तता...

(अनन्य) सबसे अलग, (चैतन्य) चित्त स्वरूप आत्मा, (ब्रज्रिन) अत्यन्त सामर्थ्य वाला, (थाह) अन्त, पार, (क्षुद्र) छोटा, (कुण्ठित) अयोग्य, लज्जित, (अगोचर) जो इन्द्रियों से न जाना जा सके

11. ऐश्वर्य की रक्षा

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः॥

ऋ. ६.४८.६, सा. ४१,१६२३

तर्जः *झाली धरी पहाट*

हे दीन बन्धु! तुमसे है प्रार्थना हमारी।
अत्यंत प्रभावशाली सन्तति होवे न्यारी॥ ॥है प्रार्थना॥

ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा वंशानुक्रम से बढ़के
बन जाती है विरासत (2) इसे तू बना उजियारी॥ ॥है प्रार्थना॥

जैसे हैं हम प्रतिष्ठित, वैसी बनें सन्तानें
अविच्छिन्न रूप से ये, (2) हो जायें आज्ञाकारी॥ ॥है प्रार्थना॥

वर्तमान और भविष्य करे, आत्म ख्याति-वर्धन
प्रभो! लक्ष्य-पूर्ति में तुम (2) बनते रहो सहायी॥ ॥है प्रार्थना॥

प्रभु तुम हो 'चित्र' अद्‌भुत गुण-कर्म-स्वभाव-पूरित
हो धीर, वीर अजेय (2) और अनन्य शान्तिकारी॥ ॥है प्रार्थना॥

झाँकी तुम्हारी पाके जो मन्त्रमुग्ध होवे
कहने से वो रुकेना (2) वाह! धन्य हो विस्मयकारी॥ ॥है प्रार्थना॥

ऐश्वर्य-रथ के तुम ही, वसुवित प्रथित रथी हो
ऐश्वर्य चाहत वाले (2) पाते कृपा तुम्हारी॥ ॥है प्रार्थना॥

रक्षा कवच हो उनके, शिवमय सुभग अनुचिन्तक।
उनकी हर इक अवस्था (2) में बन जाते मङ्गलकारी॥ ॥है प्रार्थना॥

थामा आँचल तुम्हारा, तो बताओ क्या है हितकर
केवल तुम्हीं निर्णायक (2) हम सिर्फ तेरे आभारी॥ ॥है प्रार्थना॥

हम सबको कर लो रक्षित, ऐश्वर्यमय परमात्मा!
हम और हमारी सन्तति, (2) आ चुके शरण तुम्हारी॥ ॥है प्रार्थना॥

(विरासत) आने वालों के लिये जोड़ी हुई बिना हस्तक्षेप के, (अविच्छिन्न) चैतन्यस्वरूप पूर्ण। अजेय अपरजित, (वसुवित) बसाने वाले। (प्रथित) प्रसिद्ध (पूरित) पूर्ण चित्र उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाला। (सुभग) सौभाग्यशाली। (अनुचिन्तक) प्रत्यास्मरण, बार-बार ध्यान रखने वाला। (सन्तति) सन्तान।

12. मैं तुझे चाहता हूँ

१ २ ३ १ २ र ३१२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २ ३ २

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात्। अग्ने त्वां कामये गिरा॥

साम. ८, ऋ. ८.११.७

तर्जः *ठाव दे ठाव दे*

भाव दे भाव दे
भक्ति के भाव दे, (प्रभुजी) ॥भाव दे॥

दिव्यधाम में तुम तो रहते, कैसे तुमको मिलें?
अल्पशक्ति अल्पज्ञ जीव हम (2) तेरी कृपा से पले॥ ॥भाव दे॥

सर्वशक्तिमय सर्वज्ञानमय, परमानन्द ही रहे (प्रभु जी)
स्थान तुम्हारा है अति उत्तम (2) वेद बताते रहे॥ ॥भाव दे॥

दाता तुम हो सर्वसुखों के, कृपालु तुम दुःख हरो
आखिर हम सब पुत्र तुम्हारे (2) क्यों कर तुझको तजें॥ ॥भाव दे॥

तेरा ही आत्मज हूँ भगवन्, चिन्मय आत्मा कहे,
तेरा धाम सहस्थान है मेरा, (2) स्वत्व सदा ही रहे॥ ॥भाव दे॥

भक्ति और अगाध प्रेम तव, मेरे मन में बहे,
जीवन भर तेरी ही कामना (2) शरण तिहारी रहें॥ ॥भाव दे॥

अन्तर बाहर सभी शक्तियाँ, अग्निचर्या करे
जाप तेरा करती रहे वाणी, (2) जब तक जीवन रहे॥ ॥भाव दे॥

(आत्मज) पुत्र, (अग्निचर्या) अग्नि के समान अग्निचर्या आचरण। (चिन्मय) ज्ञानमय (स्वत्व) अपनापन, अधिकार। (अगाध) अत्यन्त, बहुत अधिक, (अल्पज्ञ) थोड़ा जानने वाला।

13. उल्लासमय वातावरण

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः।
द्विजा अहं प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहुज्जायमाना॥ *ऋ. १०.६१.१९*

तर्जः डोळ्या वरुनी माझा

वसुधा है मेरी माता ये तो है नाभि मेरी
नाभि से हूँ जुड़ा शिशु, क्या क्या न जननी देती?॥वसुधा॥

फल अन्न रस व औषधि हीरे रजत व मोती (2)
सर्वतः वो करती पालन, स्थिति स्थान है वह गोदी
॥नाभि से॥

वसुधा की गोद में खेले-कूदे बढ़े हैं आगे (2)
वसुधा बनी है वसुवित कहो ना हमें अगेही॥
॥नाभि से॥

जितने हैं देव तरपर, दे रहे हैं सारे तरपत (2)
रवि-शशि समुद्र पर्वत अग्नि विद्युत सब दैवी ॥
॥नाभि से॥

व्रतनिष्ठ गुरु सन्यासी व्याख्याता विज्ञ प्रतापी (2)
मेरी सहायता में करते कभी ना देरी॥
॥नाभि से॥

सबका मैं केन्द्र बिन्दु अन्तस में उमड़े सिन्धु (2)
सर्वोपरि बली हूँ सर्वरूप हूँ मैं प्रेक्षी॥
॥नाभि से॥

मुझमें है वायु अग्नि रवि-शशि दिशाएँ औषध (2)
द्विजगण हैं सत्य-ज्ञानी विद्या-विदुर विवेकी ॥
॥नाभि से॥

हे धरणी मात, द्विजगण हे विश्वदेवा कामधुन्द(2)
सदा सर्वथा बढ़ाओ दो लाभ मुझको बेगि ॥
॥नाभि से॥

(वसुधा) धरती, पृथ्वी ।(विज्ञ) बुद्धिमान, ज्ञानी। (अगेही) घरबार रहित, आवास रहित (तरपर) एक के बाद एक (तरपत) आराम। (दैवी) देवता सम्बन्धित । (विज्ञ) बुद्धिमान, ज्ञानी। (प्रतापी) ओजस्वी।(प्रेक्षी) बुद्धिमान व्यक्ति। (विदुर) ज्ञानी, पण्डित। (विवेकी) बुद्धिशाली (कामधुन्द) कामधेनु, इच्छायें पूर्ण करने वाली (बेगि) शीघ्र, त्वरित

14. संज्ञान-संगठन-संघटन दैवी प्रवृत्ति

सं ग॑च्छध्वं॒ सं व॑दध्वं॒ सं वो॒ मना॑सि जानताम्।
दे॒वा भा॒गं यथा॒ पूर्वे॑ संजाना॒ना उ॒पास॑ते॥ *ऋ. १०. १९१. २*

तर्जः *तंग तिन्गल तिरियाय तुरुगा*

तुम सदा मिलके चलो, आचरण निरत्यय करो, (2)
मिल के बोलो, निर्भट निश्चय करो,

मन के द्वेष को छोड़ो नाता प्रेम से जोड़ो
वाणी में अमृत घोलो, प्रतत आत्मवत् हो लो
मन वाणी और हृदय मिले हों, स्नेह से मन सरसाओ
चलो मिलाकर कदम दर कदम, सुख सावन बरसाओ
॥तुम सदा...

करते करते श्रवण मनन उपजाते हैं सब एक सा मन
कहलाते वो ज्ञानापन्न क्रतु-कर्म हैं, जिनके उत्तम
ज्ञान एकता और विवेक में सही मनीषिता भाई।
एकता हो यदि मन वचनों में बनें सुकर्म के राही।
सब संजानाना हो के सत्कर्म मनोनित सोचें।
जीवन में चलो संगठित होते नित ऐसे कर्म करो॥
दीम तना दीम तना दीरन दीम दीरन, दीम तन दीम तन दीरेना
दीम तना दीम तना दीरन दीम दीरन, दीम तन दीम तन दीरेना
॥तुम सदा...

मेल मिलाप है दैवी शक्ति स्वार्थी ना होते सुमेध
स्वार्थ परायण दुःख में डूबे करते हैं हृदयभेद
क्षुद्र स्वार्थ को छोड़ समष्टि-प्रेमभाव के लिए जिओ
सामूहिक पाओ समृद्धि ऐसे मिलके काम करो
संगठन में ना कोई बाधा और ना टूटे मर्यादा
तो नित अभीष्ट की प्राप्ति हेतु मिलजुल काम करो॥
दीम तना दीम तना दीरन दीम दीरन, दीम तन दीम तन दीरेना
दीम तना दीम तना दीरन दीम दीरन, दीम तन दीम तन दीरेना॥
तुम सदा...

दैविक जगत में देखो वायु-अग्नि रहते संसक्त
सामञ्जस्य है जग देवों में पूर्ण भरा देवत्व
प्राण इन्द्रियाँ ज्योति-पुञ्ज बन हाथ बँटाते मिल-जुल
पैर में काँटा चुभे तो मन आत्मा शरीर रहे व्याकुल
सब ज्ञानी देव सुमनों से संगठित होते हैं जनों में।
और वेद कहे मन-मैल त्यागकर, सब मन-मेल करो॥
दीम तन दीम तन दीरन दीम दीरन, दीम तन दीम तन दीरेना
दीम तना दीम तना दीरन दीम दीरन, दीम तन दीम तन दीरेना॥
॥तुम सदा...

(निरत्यय) आपत्ति रहित, (क्षुद्र) छोटा, (संसक्त) मिला जुला (निर्भट) दृढ़, मजबूत, (मनीषिता) बुद्धिमानी। (हृदयभेद) मित्रता में अलगाव, (प्रतत) विस्तृत, विशाल, फैला हुआ। (मनोनित) मन वाञ्छित। (समष्टि) एक जैसा समूह। (सामञ्जस्य) अनुकूलता उपयुक्तता।

15. पाप, पापी को लौट कर आता है

असद्भूम्याः समभवत्तद्यामेति महव्यचः।
तद्वै ततो विधूपायत्प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु॥ *अथ. ४.१९.६*

तर्जः तंग तिन्गल तिरियाय तुरुगा

दुःख दुरित ईश्वर हरता
सर्वविध पालन करता
परमपिता है संसार का
ईश कर्म को तोले
खातों को फिर खोले
पाप ही दुःख का कारण
तपी करे सुख धारण
कुन्दन केवल तप से चमकता
तप साधन है हमारा
जिसने जाना मर्म कर्म का
उसने जीवन तारा ॥दुःख॥

दूरियाँ नज़दीकियाँ आत्मा की प्रभु से होये
फल वैसा वो पाये जैसा बीज कर्म का बोये

पापी का जब पाप लौट के आए तो वो रोये
चैन ना पाये दिन भर ना वो रात रात भर सोये
छुपती न पाप की चोरी
इससे तो महँगी कौड़ी
भोगे कुटुम्ब पातक-धन
पर दुष्फल पाए पाप मन
बड़ा दीन है वो पापी जिसे जीवन व्यर्थ है करना
रो रो के आया, जीवन में, रो के फिर मरना ॥दुःख॥

पाप तो पहले छोटा लगता, पर वो विस्तृत होये
दूर-दूर नभ तक फैले निज प्रतिष्ठा खोये
मित्र अनेकों होवें फिर भी ना अभीष्ट को पाये
कर ले पीर पैगम्बर साधु सन्त गुरु भी चाहे
कर्ता ही कर्मफल पाये
किये पाप ही उसे सताये
प्रभु देख रेख में निशदिन
कर कर्म नियम तोड़े बिन
शरण में आया पापी मन तो पाप से तोबा करता
स्तवन प्रभु का करते-करते इस जीवन से तरता ॥दुःख॥

(दुरित) पाप, अनिष्ट, (अभीष्ट) मनवाँछित (पातक) गिरा हुआ, नीच, (तोबा) पश्चाताप।

16. शत्रु-मित्र की पहचान

के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिपन्त द्युमन्तः।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः॥

ऋ. ५.१२.४

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्य रुषस्य वृष्णः

ऋ. ५.१२.६

तर्जः *तंदन तंदन तइमासों अर तंदनतंदन उन्नता*

शत्रु-मित्र पहचान और सत्यासत्य को जान
मित्र का कर सत्कार कर शत्रु का काम तमाम

झूठ का छोड़ विचार हो सत्यव्रती यजमान
बुद्धि और कौशल से बन जा मित्र महान
होता जो सत्यशील वही दिलाता है सम्मान
रक्षक बन आता मित्र, वही बचाता सर्वत् प्राण॥
॥शत्रु-मित्र॥

रक्षक कहाता है जो सत्कृत-दीप्तिमान
सत्य का ग्राही बन जाता सत्यकाम
जब ध्येय सत्य हो तो दबता नहीं वो अनुपम
व्यवहार ही से परखे, वो सत्यासत्य-जन-मन
अपने ही आत्मबल से, शत्रु को बाँधे बन्धन
बन्धन है विधान शत्रु का मित्र पाता है सम्मान
मित्र का धर्म है स्नेह, शत्रु का दण्ड विधान॥
॥शत्रु-मित्र॥

ऐसे ही आत्मदेव को मित्र-रिपु मिलते हैं
शत्रु प्रलोभन में आके त्वरित फँसते हैं
नैसर्ग-निमित्त कारण, दोनों अज्ञान भरते हैं
अज्ञान के विषय से तम-कुत्स-भाव बढ़ते हैं
भवबन्धन जन्मों के चक्कर में व्यर्थ पढ़ते हैं
बचना है तो त्याग कुसंग सत्यव्रती का दामन थाम
विषय-विषों का मोह छोड़ के सत्य वचनों को मान॥
॥शत्रु-मित्र॥

याजक प्रभु की जो पूजा नित करते हैं
ऐसे साधक का तो, प्रभु ही हित करते हैं
ऋतसत्य के पथिक जो पथिप्रज्ञ बनते हैं
ऋत्विज की ऋजुता की रक्षा तो प्रभु करते हैं
ऐसे साधक के संज्ञी तो आत्मोत्थान करते हैं
शान्ति जो चाहें पापी पाप का ले लें वो विराम॥
रोष रहित प्रभु सुख-वर्षक का जीतते जाओ ये संग्राम
॥शत्रु-मित्र॥

(काम तमाम) मार देना। (सत्यव्रती) सच्चाई का व्रत लेने वाला। (ऋत्विज) निष्कामी, विद्वान। (निमित्त) प्रयोजन। (सर्वत) सब ओर से। (कौशल) कुशलता, चतुराई। (ऋजुता) सरलता। (सत्यकाम) सत्य की इच्छा वाला। (रिपु) शत्रु। (नैसर्ग) स्वाभाविक।

17. यज्ञकर्ता का नाश नहीं

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्दु दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः॥ ऋ. ७.२०.६

प्रयन्ति यज्ञं विषयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुधवाच
न्युभ्रिमन्ते यशसो गृभादा दूर उपब्दो वृषणो नृषाचः॥ ऋ. ७.२१.२

तर्जः *तंदन तंदन तईमासो*

चञ्चल-चञ्चल धन आज मेरा कल दूजे के पास
स्थान बदलते रहना ही है इस धन का स्वभाव
किन्तु यज्ञ में लगा हुआ धन रहता उसी के पास
कैसी विचित्रता है? सोच रहा हूँ मेरे नाथ!
यज्ञकर्ता है दानी, बाँट के भी ना होता नाश(1) चञ्चल...

सागर जल देता है दान सूर्य से ले ले कर
बरसा देता है वो मेघ बना के धरती पर
सब स्थानों में बरसा जल पा लेता है फिर से सागर
रहता जो खड़ा ही जल दुर्गन्ध ही देता लाकर।
धन सम्पत्ति यदि गतिमान हो, देने से बनती है विमल
कर लो जमा तो डाकू चोर चकार करते हैं छल
उन्नति पाता है याज्ञिक दिन दुगनी और चौगुनी रात॥ चञ्चल....

सब धन भगवान के हैं, उसी ने सबको दे दिया है
कह के अपना इसको, सचमुच दुःख ही ले लिया है
जो 'इदन्नमम' कह कह के प्रभु निमित्त सबको बाँटे
वो करते सात्विक यज्ञ आशीश प्रभु का हैं पाते
डालें जितनी हवि यज्ञ में, कई गुना पाते हैं प्रकाश
सच्चे उपयोगी धन से जीवन में होता प्रतिभास
यज्ञकर्ता तो धन का कभी नहीं बनता है दास॥ चञ्चल...

सोमी याज्ञिक ही यज्ञानुष्ठान करते हैं
सोम रसना के वचनों से तृप्त करते हैं

वो सब हृदयों में समाते, वाचोनिधि ही बनते हैं।
वो सुख शान्ति में रहकर जन जन की सेवा करते हैं।
मौन शक्ति में उनकी संयम का होता है आभास
दबा सके ना कोई जिनको मिलता सत्य का साथ।
हरसू यश कीर्ति पाते जिनमें रहता यज्ञ-प्रकाश॥ चञ्चल...

उनके आदेशों का पड़ता है गहरा प्रभाव
सुनके उपदेश उनके कईयों के बदले स्वभाव
जन साधारण से मिलते-जुलते हैं ऐसे योगी
और बना ही लेते अपना सहकारी और सहयोगी।
यज्ञ का अर्थ ही है लोक संग्रह व सङ्गतिकरण
याज्ञिक जो बनते नहीं, स्वार्थ उन्हें करता बरबाद
भोगी विलासी स्वार्थीयों की बुद्धि चरती घास। चञ्चल...

(इदन्नमम) यह मेरा नही है (सोमी) सोमपान करने वाला (प्रतिभास) प्रकाश, चमक (वाचोनिधि) वाणी का धन(हरसू) हरजगह।

18. वेदकर्ता

इन्द्रा॑य॒ सामं॑ गायत॒ विप्रा॑य बृह॒ते बृहत्।
ब्रह्मकृ॑ते॒ विप॒श्चिते॑ पनस्यवे॑॥ *सा. पू. ३८८, सा. उ. १०२५*

तर्जः तने खोटूँ जो लागे तो हूँ शूँ करूँ

सारी स्तुतियों का पात्र तो भगवान है
सर्वगुण निधान है वो गुणेश
कौन सा ऐसा गुण जो प्रभु में नहीं,
है वो गुणसागर अतिगुण वित्तेष॥ ॥सारी स्तुतियों॥

ईश है विप्र धारणावती बुद्धिधारक
वेदकर्ता है ब्रह्म, तमवारक
सर्वतत्वों का गुण धर्म प्रापक
वेद सब सत्यविद्याओं का मूलक
सर्वगुणखान है, ईश्वर है करुणानिधान(2)
सब प्रजाओं का है वो प्रजेश॥ ॥सारी स्तुतियों॥

सत्य व्यवहार उपदेश का है वो इच्छुक
कहते हैं सब प्रभु को 'पनस्यु'
सत्य व्यवहारों की आ जाये समझ
तो मानव कभी न होवे दस्यु
ज्ञानपति प्रभु का वेद वरदान है (2)
जिसका ऋषियों ने पाया उपदेश॥ ॥सारी स्तुतियों॥

महाऋषियों के शुद्ध धीर मानसों में
वेद किये उद्भासित ऋषि हृदयों में
सत्तु की भाँति जो निज वाणी को छाना
बने वेदाध्यापक जब वेद को जाना
ऋषियों ने जो पाया सखा का सखित्व (2)
किया वेद-वाणी का उल्लेख॥ ॥सारी स्तुतियों॥

(वित्तेश) ऐश्वर्यवान, (दस्यु) शत्रु (प्रापक) पाने वाला। (ज्ञानपति) सब ज्ञानों का स्वामी (प्रजेश) प्रजाओं का पालक। (उल्लेख) लिखना, बताना। (पनस्युः) सब के द्वारा स्तुति करने योग्य। (वेदाध्यापक) वेदों को पढ़ाने वाला। (उद्भासित) प्रकट करना।

19. शरीर त्याग से रक्षा

तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम्।
मिथे यत् त्यागमुभयासो अग्मन् नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ॥

ऋ. ४.२४.३

तर्जः *तरस भर्या सुक्का जीवन मा*

तरस भरे मन के नैनों से बाट निहारुँ भगवन्।
कहाँ कहाँ न ढूँढा तुमको, ना देखा अर्न्तमन॥ ॥तरस भरे॥

हे अनन्य शरणों के शरण्य! हे प्यारे सुखकरण! (2)
सब कुछ पाकर भी निराश हूँ हे प्रभु! दुख-विशरण
भव सागर में गोते खाये (2) मिली न कहीं सुख शरण॥
॥तरस भरे॥

विध्न क्लेष बाधा विरोध है। स्थिरता कहाँ से पाऊँ (2) आऽऽऽ
हर संग्राम से जूझ रहा हूँ, नीचा देखूँ दिखाऊँ
आत्मा, इन्द्रिय-देह के वश में (2) नहीं पा रहा तरण॥ ॥तरस भरे॥

आत्मा, प्रचेता समझ गया अब इन्द्रिय-देह हैं ज्योति (2)
दूँ निर्देश देव बन इनको, बने ज्योति अवरोधी
हे सहाय! बन के मम नायक (2) बनो कृपा के करण॥
॥तरस भरे॥

उत्तम, अधम, व्यथित हताहत इन्द्र प्रभु को बुलाते हैं (2)
वाजभिलाषी आशावादी शरण तेरी ही पाते हैं
नाशोन्मुख या निराशावादी (2) ज्ञान-प्रवण ले शरण ॥तरस भरे॥

द्वार पे याचक आया, त्याग पाप जग बन्धन
झोली भर दे तेरे 'वाज' की, मैं हूँ तेरे अर्पण
देकर त्याग की रीत सिखा दो (2) दीप्त करो मन-दर्पण॥
॥तरस भरे॥

त्याग का भी मैं त्याग करुँ प्रभु तुझ त्यागी को पाकर
तारनहार! त्वरित तरणी से तारो तुरन्त ही आकर
सफल करो मनोनीत मनोरथ(2) कर दो जगमग जीवन ॥तरस भरे॥

(तरण) निस्तार, पार लगाना, उद्धार (वाजभिलाषी) ज्ञान अन्नधन बल ऐश्वर्य के अभिलाषी। (प्रवण) प्रवृत्त, संलग्न। (मनोनीत) मनचाहा (विशरण) मार डालना (करण) साधन

20 ज्ञानी पुरुष सब ओर ईश्वरकृत

अतो॒ विश्वान्यद्भु॑ता चिकित्वाँ अ॒भि प॑श्यति। कृतानि॒ या च॒ कर्त्वा॑॥

ऋ. १.२५.११

तर्जः *ताडुम्न सूर्य नेटवाना मलयाडी तैनितिडुम्बोय*

होते हैं सब आश्चर्यचकित देख के घटनायें इस जग की
कभी प्रकाश कभी अन्धकार में आते जाते दिवस-रजनी
नन्हा बीज वृक्ष बन जाए, देखे जीवन मृत्यु-घड़ी। होते हैं...

आग बरसती पृथ्वी पर जब ज्वालामुखी कई फट पड़ते
भूकम्प आते कई, कुछ मिटता, कई राजा भी रंक हो जाते
अद्भुतता प्रभु की वही जानते(2) जो ईश्वर की लीला समझते॥
होते हैं...

चमत्कार जो अद्भुत देखते खोज तो इन वैज्ञानिकों की
बातें चकित श्रोताओं को करती सिद्ध साधु और सन्तों की(2)
एक से बढ़कर एक पदार्थ (2) देन है प्रभु महेन्द्र की॥ होते हैं...

'चिकित्वान' ही जानते हैं सब लीलाएं परमेश्वर की
अग्नि जलवायु पृथ्वी आकाश देवे अनुदान में ऐश्वर्य ही
इनके बिना ना खोज है सम्भव, (2) ज्ञानी में वृत्ति ना आश्चर्य की (2)
होते हैं...

हो चुकी बातें अद्भुत अब तक, या होंगी कई, अगली बार
तख्त पे कोई बैठेगा या तख्त पलटने वाली बात
प्रभु सहज लीला में लीले, कुछ ना ईश से है अज्ञात(2) होते हैं...

गूँगे को वाचाल करें प्रभु, लँगड़ा लाँघे ऊँचे पहाड़
इसमें न है कोई अचम्भा पहचानो कर्त्ता के काज
आओ मनुष्यो मर्म जानकर प्रभु पर करें पूर्ण विश्वास॥(2) होते हैं...

(चिकित्वान) जानने वाले (अनुदान) भेंट

21. विषम हवाएँ

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते।
सग्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि॥ *अथर्व. १९. ८. ६*

तर्जः *तारिनम कई गाळिल मुत्तुम्कोनुम मिट्टिमिल तुड्डकरी चंदन वुम*

चल रहीं चहुँ दिशि विषम हवाएँ
फैशनपरस्त विषयों की राहें
बालक-युवक-युवति सबको
अटपट नशे में पागल बनाये (2)

॥चल रही॥

मदिरापान की हवा नशीली
हठधर्म-हिंसाएँ बढ़ती भड़कीली
अब्रह्मचर्य में नष्ट होते स्वास्थ्य
करें व्यापार में तस्करी चोरी
खुद को विपत्ति में डाले वो काहे?

॥चल रही॥

धन झट कमाने की दुस्तर आशा
सज्जनों का भी पलटाते पासा
कहें सच्चा खुद को करें घूसखोरी
बेची जाती कहीं कन्या बेचारी
गोली बन्दूक भी, जान ले जाए॥

॥चल रही॥

शुद्ध चीज़ों में भी पाते मिलावट
नकली में असली की होती बनावट
कहीं जेब कतरी कहीं चोरी डाका
चोर खायें ज्यादा सज्जन का फाका
दिखती हैं हरसू ये विषम हवाएँ

॥चल रही॥

हे ब्रह्माण्ड-राष्ट्र के पालक!
हे ब्रह्मणस्पति दुर्गुण विदारक
विषम हवा बदलो कर दो अनुकूल

हर लो विषम झंझावतों की धूल
हे इन्द्र! साधित सन्मार्ग दिखायें॥

॥चल रही॥

ईश-पूजा! प्रेम, सेवा दया
सन्तोष आत्मशुद्धि तपस्या
सत्य अस्तेय अहिंसा ब्रह्मचर्य
अपरिग्रह क्षमाशीलता धैर्य
जनमानस में ऐसी हवा बहायें।

॥चल रही॥

शीतल सुखद मन्द सुगन्धित
सात्विकता की बयार चलाओ
जनमानस में तूर्ण तरंगें
अपनी कृपा से तद्वत उठाओ
जो शिवतम वर्षा बरसायें॥

॥चल रही॥

(विषम) भयंकर, (अटपट) उल्टा सीधा, भयंकर, (दुस्तर) विकट पार करने में कठिन, (पासा पलटाना) दुर्भाग्य आना (हरसू) हर जगह (ब्रह्मणस्पति इन्द्र) महाज्ञानी ऐश्वर्यवान परमेश्वर (विदारक) नष्ट करने वाला (झंझावात) तूफान, आँधी, (साधित) स्वच्छ करने वाला, (बयार) हवा (तद्वत्) उसी के समान, (शिवतम) अत्यन्त कल्याणकारी, (तूर्ण) शीघ्र।

22. शुनःशेप की पुकार

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चिष्टे।
शुनः शेपो यमह्वदृभीतः सो अस्मान्नाजा वरुणो मुमोक्तु॥ *ऋ. १.२४.१२*

तर्जः *तारुम तडिरुम निडकू तित्ताडे श्यामा बरत्तिम*

पालन कर लूँ नियमों का भगवन्
जीवन में सुख-शान्ति कर लूँ मैं धारण
कर दया, मुझको शक्ति दे परमात्मन्,
जितने भी ज्ञानी लोग यहाँ
कहते हैं पालो सत्य नियम॥ ॥पालन कर लूँ॥

केवल तत्वज्ञ कहते नहीं हैं कह रहा हृदय का भी ज्ञान (2) आऽऽऽ
नियम परायण होना है सबको कहता है वरुण का विश्व-विधान
अब मैं नियमों से जीने का करता हूँ प्रण॥ ॥पालन कर लूँ॥

हे नाथ अब मैं गृभीत हो गया हूँ आया हूँ पकड़ में संसार की
यूँ तो माँ अदिति सुख दे रही नियमों से करती है सत्कार भी
किन्तु मुझको तो पाने हैं तेरे दर्शन॥ ॥पालन कर लूँ॥

चाहत है मुझको साक्षात्कार की और तज्जन्य मोक्ष के आनन्द की(2)
संसार के सुख में, बन्धन बहुत हैं, मुझको तो है आस तुझ पावन की,
इसलिए तुझको है पाने का मन॥ ॥पालन कर लूँ॥

ऐ मेरे आत्मा शुनःशेप बन जा, कर ले तू अनुभव जग के बन्धन
बन्धन से मुक्ति पाने के हेतु, कर ले ईश्वर का आवाहन
हार्दिक पुकार सुन लेंगे भगवन्॥ ॥पालन कर लूँ॥

देनी है शक्ति तो ऐसी प्रभु देना औरों की मुक्ति का भी हो जतन(2)
कल्याण अपना ना चाहूँ मैं केवल, दूजों के कल्याण के हों करम
मेरी मंङ्गल पुकार में प्रभु का भजन॥ ॥पालन कर लूँ॥

(गृभीत) संसार के चक्र में पकड़ा हुआ, (शुनःशेप) ज्ञानी आत्मा

23. ओ३म् प्रतिष्ठित

मनो॑ जू॒तिर्जु॑षे॒तामा ज्यस्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञामि॒मं त॑नो॒तु
अरि॑ष्टम य॒ज्ञं सामि॒मं द॑धातु। विश्वे॑ दे॒वास इ॒ह मोदयन्ता॒म् ओ३म् प्रतिष्ठ।

यजु. २/१३

तर्जः *तिन्द्रल वन्द येनै तोडुम आदा सप्तम इन्द्री*

आत्ममंथन यज्ञ से
कर अहिंसन यज्ञ से
चक्षु श्रोत यज्ञ से
इन्द्रियाँ भी यज्ञ से
सब जपें ओ३म् का नाम यज्ञ से॥ ॥आत्म मंथन॥

कर लिया यज्ञ आयोजन
घृत सामग्री अन्य साधन
आ गये हैं ऋत्विज जन
हुआ यजमान का आगम
हैं निमंत्रित सर्व विद्वतगण
लेके आसन किये हैं प्रारम्भ
मन्त्रोच्चारण यज्ञ के॥ ॥आत्म मंथन॥

जब तलक यज्ञ ना सम्पन्न
यज्ञ विषयक हो चिन्तन
आत्मा रूपी बृहस्पति
यज्ञ फैलाये आजीवन
यज्ञ की विधियाँ हों हृदयंगम
ओ३म् प्रतिक्षण ध्याये ये मन
तृप्ति लाभ हो यज्ञ से॥ ॥आत्म मंथन॥

24. वन्देमातरम

शि॒ला भूमि॒रश्मा॑ पां॒सुः सा भूमि॒ः संधृ॑ता धृ॒ता।
तस्यै॒ हिर॑ण्यवक्षसे पृथि॒व्या अ॑कर॒ं नम॑ः॥ *अथ. १२. १. २६*

तर्जः *तिन्दिय वेनमनी किट्टामुत्ता*

गौरव गीत गाते नहीं थकते,
हे राष्ट्रभूमि माँ,
तन मन धन बलिदान है तुझपे
तू करती है पालना
जिसकी प्रशंसा सुन होते हैं आनन्दित
और सुन के निन्दा, हम होते क्रोधान्वित ॥गौरवगीत॥

यूँ तो ये भूमि है धूल-शिला-पत्थरीय
पर प्राणी बनते राष्ट्र सजीव
विकसित करते बन खेत पर्वत
नद नहरें सिन्धु और अर्घट
उद्योग धंधे, कल-कारखाने
बाग बगीचे खनिज की खानें
शिक्षा दीक्षा और चिकित्सा
करते पूरी प्रजा की अपेक्षा
पाना, बढ़ाना, उगाना सजाना
मान बढ़ाना भूमि का॥ ॥गौरवगीत॥

निष्प्राण पृथ्वी, आदृत हो गई
मान-अपमान उसका अपना लगे
इन्च इन्च भूमि की रक्षा की खातिर
दुश्मन के दाँत हम खट्टे करें
कर्त्तव्य जागें राष्ट्रोन्नति के
कीर्ति प्रतिष्ठा भूमि की बढ़े
ये भूमि तो हैं 'हिरण्यवक्षा'
सदा ही करती प्रजा का भला
गर्भ में रजत सुवर्ण की खानें
हीरे मोती रत्न जमा॥ ॥गौरवगीत॥

मणि-मुक्ता अरु रत्न धारिणी
गौरव-मण्डिता माँ मनमोहिनी
गुप्त भूगर्भ से पाते हैं सम्पत्ति
अनुसंधान की करके कृति
पाते हिरण्यादि उपकृति
प्रजा हितार्थ, प्रजा में बँटती
आपस में हम एक इकाई
तुझ माँ से हर वस्तु पाई
सुजला सुफला मलयज शीतला
सस्य श्यामला नमन तुझे माँ!

(सजीव) जीवित (अपेक्षा) चाह, जरूरत, प्रत्याशा (आदृत) आदर किया हुआ। (हिरण्यवक्षा) सुवर्णगर्भा (मुक्ता) मोती (मण्डिता) अलंकृता, विभूषिता (अनुसंधान) जाँच, खोज (कृति) कार्य, रचना। (हिरण्य) सुवर्ण, धन, गहना। (उपकृति) उपकार, (सुफला) अत्यन्त उत्पादक, अच्छे फल देने वाली। (मलयज) सुगन्धित पौधों की पर्वत श्रंखला, (चन्दनादि)। (सस्य) उपजाऊ। (सुजला) पवित्र जलों वाली।

25. दुविधा मे दोनों गये माया मिली न राम

रेवद्वयौ दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम्।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम्॥

तर्जः *तिरकादी काटी कुल्ले तिरकादी पिलै कुल्लै आ ऽऽऽ*

दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम
ना तो बना बनिया ना देव ना भगवान्॥

दो मान्य वस्तुएँ अद्भुत जगत में हैं
इक तो धन, दूजा ज्ञान
देवत्व नष्ट करे बन के सकाम
देव तो होते निष्काम

दुचित्ता के कारण मिले ना वसुधन
सुचिताई से मिलता है अनगन
चाहे हो स्नेह चाहे अपनापन
सौदे की दृष्टि से ना करना काम॥ ॥दुविधा में॥

मित्र वरुण दोनों दैवी शक्तियाँ
इक अपनेपन वाली दूजी स्नेही माँ
हैं दोनों अर्हणा
हैं अमित प्रभा
द्विभाव जहाँ आनन्द वहाँ,
अहो! अहो! अहो! अहो! ऊर्मि
ये मान आयु बढ़ाये अमोघ
ये बढ़ाती हैं ओज
हम बनते आशुतोष
सूर्य-सेतु से भी ये बढ़के
सप्तसिन्धु से भी ये चढ़के
अपनापन, स्नेह साथ हो
दृष्टि निस्वार्थ प्राज्ञ हो
यह शक्ति देह में निर्झर ऐसे बरसे
जैसे प्राण-उदान॥ ॥दुविधा में॥

(दुचित्ता) अस्थिर चित्त, चिन्तित (अमित) असीम (अनगन) बहुत, अगणित (ऊर्मि) प्रकाश, ज्योति (वसुधन) कल्याणकारी धन (अर्हणा) पूजा।

26. सूर्य का आविर्भाव

धीरासः पुदं कुवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिपासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नृन्॥

ऋ. १.१६४.४

तर्जः *तिरियाडुन सूर्यम् तन्नुम*

सद्गुण सिन्धु परम प्रभु का साक्षात्कार अंतस् में करें
और अन्तरात्मा में सूर्यसम ज्योति, अवतीर्ण हम सब मिलके करें
अग्निस्वरूप ईश्वर, आराध्य देव हमारे
उसका प्रतिष्ठित अग्निस्वरूप मन में धरें॥ ॥सद्गुण॥

कोई तेजोमय है शक्ति, विश्व-संचालन करती
धीर तो जाने, मगर मंद, अधीरों की दृष्टि
कवि और धीर जन, ईश-आस्था-प्रीति रखते
अपने आराध्य पद पे हृदय से प्रतिष्ठित करते
हम सत्यभाव से प्रभु की अर्चना करें। ॥सद्गुण॥

इससे पहले के जागें कई दस्यु-वृत्तियाँ
भर दें हम अनेक विध हृदय में सद्वृत्तियाँ
ऐसे ही उपास्य अग्नि, प्रभु की करते हैं भक्ति
गुणों के सिन्धु से माँगते हैं परम शक्ति
भक्ति अर्चना की गति चरमोत्कर्ष पे ला धरें॥ ॥सद्गुण॥

प्रभु को हस्तामलवत अपने सम्मुख पाते
रोम रोम हर्षित करते हृदय में आनन्द भरते
इसके साथ ये भी सोचें कितक प्रभु उन्नति करते
कैसे निम्न स्तर पे खड़े लोग उर्ध्वस्तर पे चढ़ते
अन्धकार मानस पटल का उन्हें विरत दिखे॥ ॥सद्गुण॥

(प्रतिष्ठित) आदर प्राप्त (दस्यु) राक्षस, शत्रु (हस्तामलवत) हर तरफ से साफ (कितक) कितना (विरत) विमुख

27. मन्त्र की महिमा

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वात्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।

विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन्॥ *ऋ. १.६७.२*

तर्जः *तिरुवा भरणम चार्ति विडर्न्नु*

मन्त्रों की अद्भुत महिमा, मनवांछित फल पायें
पर आशय है एक ही केवल हृदय में उसे जगायें ॥ मन्त्रों की ॥

वेद मन्त्र प्रतिदिन हम पढ़ते पर क्यों होते निष्फल?
कारण केवल एक ही भक्तो हृदय ना रहता अविचल
सूनी रहती हृदय नगरिया मन्त्र शक्ति न धाये॥
अग्निदेव से सब गुण पायें अपना जीवन स्वर्ग बनायें ॥ मन्त्रों की ॥

भक्त-हृदय की गहराई से निकले भाव हैं तीक्ष्ण (2)
अन्तः करण पवित्र रहे तो मन्त्र का होवे प्रेक्षण (2)
विस्तृत सूक्ष्म ज्ञान-शक्ति ही अन्तस् तेज बढ़ाये (2)
अग्निदेव से सब गुण पायें अपना जीवन स्वर्ग बनायें ॥ मन्त्रों की ॥

'धी' को धारण करने वाले होते सदा ही स्थितप्रज्ञ (2)
कर्म सदा निष्काम वो करते करते आत्मिक यज्ञ (2)
सब कुछ शुद्ध हृदय में पाते हृदय सुक्षेत्र सुहाये (2)
अग्निदेव से सब गुण पायें अपना जीवन स्वर्ग बनायें ॥ मन्त्रों की ॥

हृदय गुहा में अग्निदेव जो छिपे हुए बैठे हैं (2)
वेद धरे हाथों में अपने सर्वेश्वर्य देते हैं (2)
वेद-मन्त्र शक्ति द्वारा ही तेजस्वी बन जायें(2)
अग्निदेव से सब गुण पायें अपना जीवन स्वर्ग बनायें ॥ मन्त्रों की ॥

यही हमारे अग्निदेव ही सब हृदयों में होवें स्थित(2)
धनेश्वर्य दिव्य शक्ति को देव ही पाते नित (2)
मन्त्रोच्चारण करना सीखें उसी से हृदय सजायें (2)
अग्निदेव से सब गुण पायें अपना जीवन स्वर्ग बनायें ॥ मन्त्रों की ॥

(अविचल) स्थिर, अडोल (प्रेक्षण) दर्शन (धी) बुद्धि (स्थितप्रज्ञ) सब विकारों से रहित, आत्मसंतुष्ट (धाये) धारण होना

28. अमरता

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिशं नृम्णं पान्ति। आ दृळहां पुरं विविशुः॥

ऋ. ५.१९.२

तर्जः *ती वेळ निराली होती*

सुन्दर दृढ़ है इक नगरी, जहाँ शत्रु घुस न पायें
उस नगरी का नाम अमरता, जहाँ आत्म त्यागी बस जाये॥
॥सुन्दर दृढ़॥

ये मार्ग भी विकट है उसका (2)
आसान नहीं है पहुँचना (2)
करे स्वार्थ-त्याग, है सम्भव
यदि अन्तःज्ञान जगाये ॥सुन्दर दृढ़॥

कर आत्म-वीर्य की रक्षा (2)
आत्मा का बल हो सच्चा (2)
कर इन्द्रिय निग्रह, और मन
कहीं भोग में ना रम जाये ॥सुन्दर दृढ़॥

रख ध्यान मनोगति पर ही (2)
दृढ़ आत्मबल हो प्रतिपल ही (2)
और आत्मा हो गुणग्राही
जो दृढ़पुरी में बस जाये॥ ॥सुन्दर दृढ़॥

दृढ़पुरी का नाम अभयता (2)
अभेद्यता, अजात शत्रुता (2)
ये आत्म-त्याग के फल ही
आत्मिक बलों को बढ़ायें ॥सुन्दर दृढ़॥

सत्यज्ञान से आत्मबली हों (2)
और साधना-ज्योत जली हो (2)
बनें यात्री हम अमरत्व के
बस यही यथेष्ट फल पायें ॥सुन्दर दृढ़॥

(इन्द्रिय-निग्रह) इन्द्रियों का दमन, इन्द्रियों का वशीकरण (अजातशत्रु) मन में शत्रुता का न होना। (अभेद्य) जो भेदा ना जा सके। (आत्मबली) आत्मा का बलिदान करने वाला (मनोगति) चित्त वृत्ति। (यथेष्ट) उचित, मनवाञ्छित।

29. द्रविणोदा अग्नि

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङ् त्वा हरामि शतशारदाय।
अवमुञ्चन्मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि॥

अथर्व. ८.२.२

तर्जः *ती दूभ तुझा त्या घटा तले*

ना जन्म ये अपना वृथा करो
इस मृत्यु पाश से बचा करो॥ ॥ना जन्म॥

सौ वर्षों का जीवन पा लो]2
सुसंगति में इसे लगा लो
जीते-जागते लोग चलें जहाँ (2)
उनके संग ही चला करो॥ ॥ना जन्म॥

ज्योत से ज्योत जला करती है]2
ज्योत जीवन जागृत करती है
मरे हुओं की चिन्ता छोड़ो (2)
तम स्वार्थ से उच्च तुम उठा करो॥ ॥ना जन्म॥

दुराचार अशस्ति छोड़ो]2
पाप ही मृत्यु-पाश है, तोड़ो
शुद्ध आहार विहार करो तुम (2)
ब्रह्मचर्य में सदा ही जुटा करो ॥ना जन्म॥

ब्रह्मचर्य ही प्रभु आदेश है]2
विद्वानों का ज्ञान विशेष है
मृत्यु को वो मार भगाते (2)
ये सीख उन्हीं से लिया करो॥ ॥ना जन्म॥

हे मेखले! आलिंगन कर]2
दृढ़ जीवन संकल्प सदा भर
बनें ऋषि सम सत्यनिष्ठ हम (2)
दुःख और अकाल से बचा करो॥ ॥ना जन्म॥

(वृथा) व्यर्थ, बेकार (अशस्ति) अप्रशस्तता, गन्दगी, बुराई। (मेखले) कौपीन, साधु की कफनी, कमरबन्द (ब्रह्मचर्य)=ब्रह्म के कार्य और कर्त्तव्य, वीर्यरक्षा

30. भगवान प्यासे के लिए जल समान

यथा पूर्वेभ्यो जारितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ।
तामनु त्वा निविदं जोहविमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥

ऋ. १.१७५.६

तर्जः *तुंगई आगनी विन्नई कन्दनी*

प्यास से जीभ सूख के काँटा बनी
जल की एकाध बून्द किसने टपका ही दी
जल प्यासे ने पाया तृषा हो गई शान्त
वस्त्राहार की चाहना मन से गई॥

क्लिष्ट आत्मा है जब, भोग में सुख नहीं तब
ईश-दर्श बिना आँखें तृसित ना तृप्त हुई
जगत ताप में झुलसा ये क्लान्त आत्मा तरसा
अमृत जल सा प्रभु मिला तब भक्त बना सुखसायी ॥प्यास से॥

भक्ति भाव भरे नैन हेरें तुझे
शान्ति पूवों की भाँति मुझको मिले
मन हुआ आकुलित, तुझसे दूर करे
बन जा अमृत सुखद, तृप्त मन कर दे
ऐसा मैं ना अकेला, सबने प्यास को झेला,
सबकी प्यास बुझा दे अन्तरशायी॥ ॥जगत ताप॥

हम अज्ञानी हैं मूढ़ वेदज्ञान से अजान
तेरे जीव हैं निर्धन तेरा सारा जहान
हे प्रभो! पहले हम सबकी प्यास बुझा
ताकि मरणोन्मुख ना हो भावी प्रजा
सब सन्तानों को शुभ जीवन का दान मिले
जीवन दान विज्ञान दिला, हे अनुभावी! ॥जगत ताप॥

(सूख के काँटा होना) बहुत प्यास लगना (अन्तरशायी) चित्त में बसने वाला।(तृषा) प्यास। (आकुलित) व्याकुल। (वस्त्राहार) कपड़े और भोजन। (मूढ़) मूर्ख, मन्द मति। (चाहना) इच्छा, चाहत। (मरणोन्मुख) मौत के मुँह में, अन्धकार में। (तृसित) प्यासा। (अनुभावी) प्रत्यक्ष ज्ञान रखने वाला (क्लिष्ट) दुःखित, अशांत, पीड़ित। (क्लान्त) थक के चूर हुआ हुआ। (विज्ञान) विशेष ज्ञान।

31. यज्ञमयी नौका

पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः॥

ऋ. १०.४४.६, अथर्व. २०/९४/६

तर्जः *तुझ साठी शंकरा*

(हमें) जग से प्रभु तरा (2)
यज्ञमयी नौका का (2)
बना दे देव हूति॥

॥जग से॥

मनुष्यत्व से उपर उठकर
नित्य प्रति कर्तव्य में रखकर
देवहूति पुरुषों के सदृष्य, हम बनें
देव-पितृ-ब्रह्मलोक पहुँच के
दे दो प्रशस्ति, हे प्रजापति! हे प्रभावन्! प्रभु प्रभावन्!
हे प्रजापति! प्रभु प्रभावन् !

दिव्यतायें भरपूर जगायें
हृदय में दृत-देवों को बिठायें
स्वार्थ तजें, याज्ञिक बन जायें हम, शुद्धतम
तीन ऋणों से हों हम उऋण
दे दो प्रशस्ति, हे प्रजापति! हे प्रभावन्! प्रभु प्रभावन!
हे प्रजापति! प्रभु प्रभावान्!

यज्ञमयी तरणी है सहारे
दुस्तर सागर पार उतारें
दैविक धर्मशील देवहूति, देवबन
कुत्सित बन ना भँवर में डूबे हम
दे दो प्रशस्ति, हे प्रजापति! हे प्रभावन्! प्रभु प्रभावन्!
हे प्रजापति! प्रभु प्रभावन्!

(देवहूति) दिव्य गुणों का आह्वान (प्रशस्ति) शुभकामना, शिक्षण, श्रेष्ठता (दृत) परम पूज्य (उऋण) ऋणमुक्त (दुस्तर) कठिनाई से पार होने वाला, दुर्गम (कुत्सित) घृणित, तिरस्करणीय

32. गणपति का आह्वान

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च॥

ऋ. १०.११२.९

तर्जः *तुझ वंदन गणराया*

हे इन्द्र तुम हो गणपति सब गणों में आ बैठो॥ ॥हे इन्द्र॥

मानवों के गण अनेक ब्राह्मण-क्षत्र-वैश्य-शुद्र
ब्रह्मचारी-गृहस्थी गण वानप्रस्थी-सन्यासी गण
धनिकों के रमिकों के लघुराज्य-राष्ट्रों में बैठो। ॥हे इन्द्र॥

जब इनमें हो वास तुम्हारा हर गण बनेगा न्यारा
सब गणों में रहेगी शुचिता लोकोपयोगी बनेगी जनता
गण हैं विश्व में अनेकों तुम सबके हितों को देखो॥ ॥हे इन्द्र॥

जब तुम छोड़ इन्हें निकलते ये लोक-संहारक बनते।
इसीलिये हम प्रार्थना करते क्यों न इनपे छाया करते
मार्ग दर्शन करो इनका कलुषिता आये तो फेंको॥ ॥हे इन्द्र॥

कवियों में तुम महाकवि हो विप्रों के विप्रपति हो
मेधाविओं के मेधावी हम सब तेरे अनुयायी
तेरे कवित्व के परिचय में वेद वाक्य हैं भरे अनेकों ॥हे इन्द्र॥

ब्रह्माण्ड की ललित कलाएँ सब कृतियाँ ये काव्य सजाएँ
और दूर दृष्टि मेधायें सब तेरी महिमा गायें
ये काव्य कला मेधायें सब गणों में नित भर दो ॥हे इन्द्र॥

तेरे बिन कुछ ना सम्भव शून्य है दूर पास का अनुभव
मानस है मदकारी ज्यादा खुद को कहे भाग्य-विधाता
ये असत्य बात न सीखें ऐसी अमद प्रेरणा दे दो॥ ॥हे इन्द्र॥

सब स्त्रोतों से उपहार लाया हूँ करुणाधार
आत्म-चित्त-बुद्धि-प्राण और मन में ईश पधारो
आन्तरिक है ये गणराज्य हे गणपति! गणों को चेतो॥ ॥हे इन्द्र॥

(गणपति) समूहों का स्वामी (शुचित) पवित्र (कलुषित) मलिन गन्दा (शुचिता) पवित्रता (विप्र) पण्डित (अमद) मदरहित, उदार।

33. जय हो उसकी

म॒हाँ इन्द्रः॑ प॒रश्च॒ नु म॑हि॒त्वम॑स्तु व्र॒जिणे। द्यौर्न प्र॑थि॒ना श॒वः॥

ऋः १.८.५, साम. १६६

तर्जः *तुझा कीर्तिसम रक्तपताका उठ महा गणपति*

इन्द्र विश्व सम्राट को जाने सुनो वेद क्या कहे?
महामहिम अतिशक्तिशाली कार्य करे बड़े से बड़े॥

रवि शशी तारे सरित् सिन्धु गिरी तुच्छ हैं उसके आगे
चक्षु श्रोत्र वाणी मन बुद्धि शरणागत बन जाते
अनन्त नाम, गुणी गुण-स्तुतियाँ जगत के स्तोता करें॥
॥महामहीम॥

जितनी वस्तु हो सर्वोत्तम उतनी श्रद्धा जागे
परमोत्कृष्ट वो इस कारण से, मन भावन प्रभु लागें,
परम सुयोग्य केवल सुपात्र वो उसका प्रेम न घटे
॥महामहीम॥

उसके बल विस्तार यशों का हम बखान क्या करें?
इन्द्र तो है उपमेय, उपमान ना कोई बन सके,
ये त्रिलोक चौंधिया दे आखियाँ वो इन सबसे बड़े॥
॥महामहीम॥

सौर्य-मण्डल आकर्षण शक्ति इन्द्र की डोर से बँधी
जिन प्रकाश से करे प्रकाशित लोक-लोकाधिपति
उसने अगणित ये नक्षत्र-पुञ्ज इस द्युलोक में जड़े॥
॥महामहीम॥

इन्द्र वज्रधर न्यायधीश जो पापी को दण्डित करे
कर्मों के अनुरूप दण्ड दे समझें तो क्यों ये करें?
आओ यशस्वी उस सम्राट का जय जयकार तो करें॥
॥महामहीम॥

(महामहिम) गौरवशाली (उपमेय) वर्णन करने योग्य (उपमान) सादृष्य, बराबरी (व्रजधर) इन्द्र।

34. मेरे भजन मेरे दूत हैं

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः।
हृदिस्पशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥

ऋ : १०.४७.७

तर्जः *तुझा कृपेने दिन उगवे हा*

भक्त तेरा हूँ, हूँ मैं भावुक
है सन्देश मेरा,
भेजना है सन्देश मेरा॥

भगवद्भक्ति के भजन हैं दूत (2)
प्रभु तक दूँ पहुँचा
भक्ति भरे ये दूत प्रज्ञ हैं
है इनमें प्रज्ञा
मन मनीषित भजन भावुक हैं
जिनमें है प्रभु-प्रेरणा॥ ॥भेजना है॥

विनम्रता से भरे दूत ये
प्रणत हृदयस्पर्शी
दूतों में औद्धत्य नहीं है।
सिद्ध ये सुदर्शी
इसके सिवा प्रभु भेजूँ किसको?
दे जो संदेश मेरा॥ ॥भेजना है॥

भेजा है दूतों को माँगने
तुमसे पूजित धन
आर्यों को प्रभु भूमि देते
देते सुभग सुमन
परोपकार-परायण करो प्रभु
दो भूमि, दो संपदा॥ ॥भेजना है॥

(प्रज्ञ) बुद्धिमान (प्रज्ञा) चमक (मनीषित) बुद्धि से युक्त (भावुक) अच्छी भावना रखने वाला। (भूमि) आधार। (प्रणत) झुका हुआ विनम्र। (औद्धत्य) अक्खड़पन (सुदर्शी) अच्छी तरह भेंट कराने वाली। (सिद्ध) जिसका तपयोग साधन पूरा हो चुका हो। (परायण) प्रवृत्त, तत्पर, लगा हुआ।

35. अन्तर की वाणी

शि॒वास्त॒ एका॒ अशि॑वास्त॒ एका॑: सर्वा॑ बिभर्षि सुमन॒स्यमानः
ति॒स्रो वाचो निहि॑ता अ॒न्तर॒स्मिन्तासा॒मेका॒ वि प॑पा॒तानु॒ घोष॑म्॥

अथर्व. ७.४४.१

तर्जः *तुझे गीत ओठी तुझा हात*

करे हित जो वाणी वही देववाणी
इसे जो भी समझे वही है सुजानी॥
॥करे हित॥

कपट क्रोध द्वेष ना होवे ना छल
महाभेद ये, इसे याद रखना प्रतिपल
है कल्याण तेरा जो छोड़ दे गुमानी॥
॥करे हित॥

क्यों बोले बुरा, बेखटक प्रसन्न होके
तू सोचे, बुरे शब्द, उसी पल नष्ट होते
मगर जाने ना कितनी इससे होती हानि॥
॥करे हित॥

चार ही रूप परा पश्यन्ति, मध्यमा
निराकार या साकार ज्ञान रूप उत्तमा
प्रकट होती चौथी वैखरी वाणी॥
॥करे हित॥

बना दे वो रूप इनका श्रेष्ठतम या बुरा
इक में है कल्याण का दूजा नाश से जुड़ा
गुप्त गौओं को ना दिखा तू नादानी॥
॥करे हित॥

अगर तेरी वाणी में सरस्वती का वास
तो होगा जीवन का सुन्दर विकास
सुखद यात्रा जीवन की होगी सुहानी॥
॥करे हित॥

(परा) मूलाधार से निकली वाणी। (पश्यन्ति) मूलाधार से उठकर हृदय में जाने वाली वाणी। (मध्यमा) हृदयस्थ वाणी। (वैखरी) कानों द्वारा सुनी जाने वाली वाणी। (गुमानी) अभिमान, मद।

36. प्रभु कृपा द्वारा द्वेष सागर से पार

प्राग्नये॒ वाच॑मीरय वृष॒भाय॑ क्षिती॒नाम्। स नः॑ पर्षदति द्विषः॥

ऋ. १०.१८७.१, अथर्वः ६/३४/१

तर्जः *तुट्ट तुट्ट तुट्टे इलोम तिंदले*

द्वेष प्रतिद्वेष के कारण बन गया है जीवन दारुण॥
द्वेष करे सुख का अन्त बने यही दुःख का कारण॥
वैर का बदला वैर से दे दिया द्वेष निरन्तर बढ़ता ही गया।
भाई रहा ना मित्र, सम्बन्धि भी हृदय में ना रहा॥ ॥द्वेष प्रतिद्वेष॥

आज तू अपने बनाये द्वेष सागर में घिरा
बदले की आग से खुद सबकी नज़रों से गिरा
अब जहाँ पहुँचा वहाँ तू चारों ओर से व्याकुल
द्वेष तुझे ही करेगा तंग, पायेगा न तू भी अमन॥ ॥द्वेष प्रतिद्वेष॥

द्वेष-चक्र से जो निकलना चाहे, तो तू सँभल जा
अग्निदेव को वाणी पहुँचा के पार तू निकल जा
वृषभ देव हैं आश्रुतकर्ण प्रार्थनाओं को लेगा सुन,
कामना पूरक करुणा कन्द भक्तों को देता है आनन्द॥
॥द्वेष प्रतिद्वेष॥

प्रार्थना को पहुँचाने की काहे की अब देर है
हार्दिक इच्छायें हों तो ना देर ना सबेर है
वाणी में हो गर प्रकर्षण, बस सामर्थ्य रह जाये उत्तम
अग्निदेव ना करें विलम्ब जब भी देखें सही प्रसंग ॥द्वेष प्रतिद्वेष॥

द्वेष तो है सुख का बाधक, ये समझ ना द्वेष कर,
प्रेम है सदा सुखदायक, बसते हैं जिसमें परमेश्वर
द्वेष रिपुओं को भगा, बन प्रार्थी अपना भाग्य बदल
तेरी प्रार्थना लेंगे सुन, क्योंकि प्रभु हैं करुणाकंद॥ ॥द्वेष प्रतिद्वेष॥

(द्वेष) जलन। (प्रकर्षन) श्रेष्ठता, आकर्षण। (प्रतिद्वेष) शत्रुता। (रिपु) शत्रु। (दारुण) निष्ठुर। (अमन) सुख चैन।(वृषभदेव) अभीष्टों को बसाने वाले देव। (आश्रुतकर्ण) चारों ओर से सुनने वाला। (प्रसंग) भक्ति, संलग्नता, अवसर।

37. उसकी सब प्रशंसा करते हैं

विश्पतिं यह्वमतिंथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च बाघताम्।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसिन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे॥

ऋ. ३.३.८

तर्जः तुट्टाल पूकुम्बो मीयिन नोवन राजाति

आओ हम वैश्वानर प्रभु से, पा लें उभय निधि,
भौतिक और आध्यात्मिक धन की, करें याचना सभी
आह्लादायक वो प्रभु मन्द्र हैं, देते फुहार आनन्द की
दिव्य गुणों का ईश है दाता, है सर्वात्मन्॥
स्तुतिमय सत्यं शिवं सुन्दरम॥

॥आओ हम॥

ऐश्वर्यों की किसे चाहना? वस्त्र खाद्य सोना चाँदी
असली धन मानव इसे समझे, पा के मिलेना शान्ति
धन से विहीन फकीर खुद को समझे अमीर
चाह इसकी प्रभु, माने जिसे तक़दीर
रहे ना भक्त कभी निर्धन॥

॥आओ हम॥

तीन ऐषणाओं के त्यागी होते हैं, सार्थक सन्यासी
लोक-हितों का अर्जित धन ही जाना जाता है सर्वोपरि
रहें प्रभु उनके साथ, पाते हैं प्रभु का प्रकाश
लक्ष्य ना उनसे दूर; पाते प्रभु-गुण प्रचूर
प्रभु-अवलम्बन ही सच्चा धन

॥आओ हम॥

(उभय निधि) उन्नति की ओर ले जाने वाला धन (प्रचुर) अत्यधिक

38. दीप की कथा

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जानिमा विवक्ति।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्

ऋ. ९.९७.७

तर्जः *तुन्तुरू अली नीर हाडू कम्पनान*

मेरी जान! ऐसा गीत गा तू
ऐसी लय तान उठा तू
मौन असीम संगीत-स्वर
हृदय पे कर दें अकत असर
के परिमित शब्द लगें तुच्छकर
दृष्टि दैवीय हो तो तेरी पूत
इसकी ज्योति से हो जाएँ सूच

मेरी जान।...

कर ले उपासना जीवन में, उपास्य के गुण कर धारण
कामना होती जाए सफल, सिद्धि पाये कान्ति बन
हर चेष्टा में कविता होगी बनेगा काव्य-जीवन
होगी बोलने हँसने में, दिव्य छटा का अनुक्रम
होगा धर्म मेघ का गायन गर्जन
शब्द सीमाओं की लय का घन
होगा सूच विश्व-वातावरण॥

मेरी जान।...

कान्तिमूर्त कविता की बन, दिव्य ज्योति कर तू सवन
कर दे ज्योर्तिमय जग को, एक दीप से बहु दीपन
इन दीपों की दीप शिखा में कथा है प्रादुर्भाव की
गीत तान आलापों की आत्मा के सद्भावों की
मेरी जान! सुना जा उज्जवल कथन
दिव्य दीप-शिखा हो उत्तङ्ग
होवे संसार का स्वस्त्ययन॥

(पूत) पवित्र (अकत) संपूर्ण (उत्तंङ्ग) अत्यन्त उन्नत

39. कोंपल फूटी

असाव्यंशुर्मदाय्याप्सु दक्षो गिरिष्ठाः। श्येनो न योनिमासदत्॥

तर्जः तुम्बी तुम्बी बावा तुम्बक्

काले काले बादल, हरे हरे पर्वत (2)
बही नदियाँ झरे झरने फव्वारे फर फर
हृदय खिला प्रभु लीला देखी जब सर्वत
वाह! अरे वाह! ॥काले काले बादल॥

नी रे सा सा सा सा, म ध प प प प, गपम, रेमग, सा ग रे रेऽऽऽ
नदियों के ऊँचे नाद, सुरीले संगीत-प्रपात
हरे हरे वृक्षों के पात, झूमें नाचें गायें आलाप
मानो आदिम ऋषि-मुनि सृष्टि करें हृदय से जाप
वेद मन्द्र का ऋषिजन जैसे लेते हैं रसास्वाद
रस में व्यापक प्रतत प्रवाह,
फिर क्यों सूखा रह जाता हृदय ॥काले काले बादल॥

गग मम पप रेरे नी रे सानीसा॥
आहा! प्रेम पवन का झोंका, जाने कहाँ से आ गया
रस लहरी का थपेड़ा, इस मरुस्थली में सुहा गया
मैं मस्ताना, झूम रहा मरुस्थल में फूटी कोंपल
विलास भूमि जो थी सूनी, उठ गई उसमें तरङ्ग
सूखा काठ रहा ना अब, मैं लचकती अनुग्रह-शाख सुभग ॥काले काले॥

मुझको झुका गई कृपा तेरी, सीखी बात मैंने नई
बना हृदय स्नेह सम्पन्न हुआ मैं संत-यति
बाज घोंसले में आ जाता जंगल भी नागर बन जाता
भक्त हृदय में बँध जाता है संजीवन शक्ति को नाता।
सोम स्वरों से परिपूरित, करो गान सफल, हे सोम प्रवर! ॥काले काले॥

मुझको झुका गई कृपा तेरी, सीखी बात मैंने नई
बना मेरा हृदय स्नेह सम्पन्न, हुआ हूँ मैं संत-यति
बाज घोंसले में आ जाता जंगली भी नागर बन जाता
भक्त हृदय में बँध जाता है संजीवन शक्ति से नाता
सोम-स्वरों से परिपूरित, करो गान सफल, हे सोम प्रवर! ॥काले काले॥

(प्रपात) झरना (सुभग) भाग्यवान (निष्पति) पूर्णता (आदिम) पुराना, पुरातन। (नागर) नगरवासी। (प्रवर) श्रेष्ठ। (विलास) अनुराग प्रेम । (संजीवन) सम्यक प्रकार का जीवन। (प्रतत) विस्तृत, फैला हुआ। (अनुग्रह) कृपा।

40. महिमावान परमेश्वर

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म
न राधसोराधसो नूतनस्यन्द्र नकिर्ददृश्य इन्द्रियं ते॥

ऋ. ६.२७.३

तर्जः *तुलसी माते तुला पूजते*

हे परमेश्वर! तू है महान
करते सब गुणगान (2) होऽऽऽ

॥हे परमेश्वर॥

ज्ञान, कर्म, शक्ति परिमाण में, अति महान प्रभु अति गुणधारी।
अपने अनुभव से करते कृत्य महिमा गाते सब संसारी।
हे मधवन्! तेरे मधवत्त्व का, कैसे करें अनुमान॥

॥करते सब गुणगान हे परमेश्वर॥

थाह न पाई ऐश्वर्यों की, कल्पना मात्र ही रही मनों में,
भूत अनादि, भविष्य अनन्त है फैले पड़े भण्डार धनों के
बरसें सब ऐश्वर्य निरन्तर, कृपाधीश उद्दाम॥

॥करते सब गुणगान हे परमेश्वर॥

तेरे राधस, तेरी सिद्धियाँ सामर्थ्यों का अन्त नहीं है
नये नये राधस हम खोजें, है प्रबन्ध, प्रतिबन्ध नहीं है
'इन्द्र' है ऐश्वर्यों का दानी, चहुँ दिशी दे उपदान

॥करते सब गुणगान हे परमेश्वर॥

हम जैसी न इन्द्रियाँ प्रभु की, फिर भी क्षमता दानों की
अजब अचम्भा देखा हरसू देखी गति ब्रह्माण्डों की
हर वस्तु का अन्तर्यामी, बरसे कृपा अविराम॥

॥करते सब गुणगान हे परमेश्वर॥

(मघवन्) ऐश्वर्यशाली। (उद्दाम) विशाल बड़ा। (राधस) साधक के ऐश्वर्य। (उपादान) उपहार, भेंट, नज़राना। (हरसू) हर तरफ सब ओर। (अविराम) बिना रूके, निरन्तर

41. घर की गौ की महिमा

स्व आ दमे॑ सु॒दुघा यस्य धे॒नुः स्व॒धा पापाय सु॒भ्वन्नमात्त।
सो अ॒पां नपा॑दू॒र्जयन्नप्स्व१न्तर्वसु॒देया॑य विध॒ते वि भा॑ति॥

ऋ. २.३५.७

तर्जः *तुला न कळले मला न कळले*

गौ भक्त बन के गौ-सेवा कर ले
घी और दूध की नरियाँ भर ले॥
॥गौ भक्त॥

घृत दुग्ध उत्कृष्ट है गौ का,
पीता रह तू चूक ना मौका,]2
होगा कभी ना स्वास्थ्य का धोखा(2)
धन सौभाग्य ले, बचना ज्वर से॥
॥गौ भक्त॥

शक्तिहीन को शक्ति मिलती,
शोभाहीन को सुन्दर करती,]2
मधुमय बोली, सरल सी सुरभि,
घर आँगन कल्याण से भर दे॥
॥गौ भक्त॥

गौओं को उत्तम चारा दे
जल विशुद्ध श्रद्धा द्वारा दे]2
हृदयी प्रीत से पुचकारा दे
बन पशुपति, स्नेह भर भर के
॥गौ भक्त॥

मेघ में जिस विध विद्युत शक्ति
गोपति पाये दुग्ध से दीप्ति]2
हृष्ट पुष्ट सुश्रीक सुन्दर सी
विद्युत जैसा, तू भी चमक ले॥
॥गौ भक्त॥

(गौ भक्त) गौ का सेवक। (पुचकारा) स्नेह भरी वाणी का शब्द। (घृत) घी। (मेघ) बादल, पर्जन्य। (दुग्ध) दूध। (गोपति) गाय का स्वामी। (उत्कृष्ट) अति उत्तम। (दीप्ति) आभा, चमक। (ज्वर) बुखार। (सुश्रीक) सुन्दर शोभायमान। (सुरभि) गाय, गौ धेनु। (विद्युत) बिजली, तड़ित। (पशुपति) पशुओं का स्वामी।

42. भगवान का ज्ञान तारक

अग्निर्धिया स चैतति केतुर्यजस्य पूर्वः।
अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ *ऋ. ३.११.३*

तर्जः ***तुला पाहताना***

तुझे देखना है, प्रभु दर्शन दे
मन कब से है व्याकुल
जी भर के देखन दे॥

॥तुझे देखना॥

तुझे देखने के लिये काम इन्द्रियों का क्या?]2
ना वाणी से जाना जाये, विषय है ये ध्यान का,
हृदय गुहा के रहवासी अग्निरूप दर्शन दे॥

॥तुझे देखना॥

मन रिक्त रखना कठिन, पर नहीं ये नामुम्किन]2
विषयों से मन हटा के ध्यानावस्थित हो प्रतिदिन
दुर्बल है चंचल मन इसको तू संयम दे॥

॥तुझे देखना॥

एक ब्रह्म तू अविनाशी सर्वोत्कृष्ट है]2
ध्यानियों के शुद्ध हृदय में तू संसृष्ट है
इक तू ही अमृत सेतु कृपा कर शरण दे॥

॥तुझे देखना॥

(संसृष्ट) हिला मिला (सेतु) पुल, बाँध

43. हृदय से तेरा चयन

यस्त्वा॑ हृदा की॒रिणा॒ मन्य॑मा॒नोऽम॑र्त्यं॒ मर्त्यो॒ जोह॑वीमि।
जातवे॑दो॒ यशो॑ अ॒स्मासु॑ धेहि प्र॒जाभि॑रग्ने अमृत॒त्वम॑श्याम्॥

ऋ. ५.४.१०

तर्जः *तुला पाहिले मी नदीच्या किनारी*

मुझे चाहिये प्रीत तेरी हृदय में
पुकारूँ तुझे प्रेम से हर समय में
तेरी छत्रछाया ही जीवन है मेरा
अनुराग पाऊँ तेरे आश्रय में।
॥मुझे चाहिये॥

न काया रहेगी न माया रहेगी
मगर आत्मा तो तेरे संग रहेगी
गुणों का है भण्डार तू मेरे स्वामी
करूँ मैं स्मरण तेरा चारों प्रहर में
॥मुझे चाहिये॥

न चाहूँ मैं वैभव न पुत्र कलत्र
न भू सम्पत्ति ना विषयों का महत्त्व
हुआ बोध मर्त्य हूँ, चाहूँ अमर्त्य
मेरी आत्मा का सुख ज्योतिर्मय में
॥मुझे चाहिये॥

अमर्त्य आत्मा है मगर देह नश्वर
सदा ईश-आत्मा का नाता परस्पर
सभी हैं दुःखी त्रस्त मृत्यु से, ईश्वर!
मिटा मृत्यु भय, मुक्ति तेरे अमृत में
॥मुझे चाहिये॥

(अनुराग) स्नेह, प्रेम, लगन, अनुरक्ति (अमर्त्य) अमर (मर्त्य) मरणशील (त्रस्त) सताया हुआ।

44. चित्त वृत्तियों का शोधक ठिकाना

परा हि में विमन्यवः, पतन्ति वस्य इष्टये।
वयो न वसती रूप॥ *ऋ. १.२५.४*

तर्जः *तू जहाँ जहाँ चलेगा तेरा साया साथ*

तू जो मेरी सुध न लेगा
तो बता क्या मेरा होगा
मेरे दाता, दुःख त्राता
हे विधाता, सुखदाता॥

॥तू जो॥

ये जो पाप-वृत्तियाँ हैं उन्हें मन में आने ना दूँ
तेरा पा के साथ प्रभु जी सत्कर्म को मैं साधूँ
मद काम क्रोध लोभ का साया फिर न होगा
मेरे दाता, दुःख त्राता
हे विधाता सुख दाता॥

॥तू जो॥

हे प्रभु! तू हैं 'विमन्यु' मुझको भी ऐसा कर दे
आया तेरी शरण में तेरा प्यार मुझ में भर दे
ऐश्वर्यमय आनन्दित जीवन अबाध होगा॥
मेरे दाता दुःख त्राता।
हे विधाता सुखदाता॥

॥तू जो॥

(आसंग) प्रेम, अनुरक्ति (आक्रम) यश, बल, पराक्रम। (विमन्यु) क्रोध रहित। (अबाध) बाधा रहित, निर्विघ्न।

45. जो तुझे चाहते हैं वही तृप्त होते हैं

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥

ऋ. ५.३१.१३

तर्जः तू ना असो वा असो सांवली

दीन बन्धु करुणाकर सिन्धु
तेरी चाहत की वर्षा कर
सकल पदार्थ नीरस जग के
तेरे आनन्दरूप का रस दे॥

॥दीन बन्धु...॥

हुई निराशा स्वार्थी जग से
उलझ गया प्रभु मैं पग पग पे
किया दूर तुझको इसे मन ने
दुःखी हुआ पापों के फल से
बँधा रहूँ प्रभु प्रेम में तेरे
तेरा प्रेम हृदय में भर दे

॥दीन बन्धु...॥

तेरे याज्ञिक भक्तों को प्रभु
अपनी ओर ही प्रेरित कर तू
तेरा बनकर तुझको ध्यायें
तेरा यश गायें करुणाकार
शरणागत की लाज तू रखना
पथ से ना भटकें, प्रभु बल दे

॥दीन बन्धु...॥

(याज्ञिक) त्यागशील यज्ञ से सम्बन्धित (नीरस) रसहीन, फीके।

46. रस भरी ज्योति

१ २ ३१ २ र ३१ २ र
प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मि न विभ्रदर्षसि।
३ २ ३ २ ३ १ २
अभिदेवाꣳअयास्यः *साम. ५०६*

तर्जः *तू निरागस चन्द्रमा*

तू निरागस चन्द्रमा, है तुझे जाना कहाँ?
काटता पृथ्वी के चक्कर, पर है द्यु का आसरा॥
॥तू निरागस॥
भावना के चन्द्रमा, तू क्या है तुझको क्या कहूँ?
चिंगारी सी है चमक, भीने भावों में है अश्रु॥
॥तू निरागस॥
बोध होता है तेरा, जो दो दिशाएँ हैं तेरी
ज्ञान की है इक, प्रकाशित, दूजी आर्द्र भावना भरी
॥तू निरागस॥
नैनों की भाँति चमकता और उमड़ता है सदा
हर्ष प्रेम सहानुभूति उमड़े अश्रु दया है जहाँ...
॥तू निरागस॥
मेरी जान! तू चाँद है रस पूर्ण ज्योति है जहाँ
तेरी चमक से लहलहाते हृदय और हरियालियाँ
॥तू निरागस॥
तेरी आँख द्युलोक के उस ओर ही इकटक लगी
तुझको ज्योति और विकास की, है लगी आशा बड़ी॥
॥तू निरागस॥
है यही प्रतिपन्न उपाय के पृथ्वी-ओट से आ बाहर
सूर्य के सम्मुख हो जितना उतनी पाये प्रभा प्रवर॥
॥तू निरागस॥

(निरागस) पाप रहित (प्रवर) श्रेष्ठ (प्रभा) चमक (आर्द्र) गीलापन।

47. हे सर्व दुःख छेत्ता

पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश।
पुरा नो बाधादुरितातिं पारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते॥ *ऋ. ६.७०.६*

तर्जः *तू सप्तसूर माझे*

भूले को राह दिखाओ
हे विधाता लक्ष्य के आओ
भव सिन्धु में है जीवन
दुःख कष्ट के हो त्राता॥ ॥भूले को॥
वर्षक हो रस के हे वृषे!
अन्दर प्रवाहित हो वो मेरे
पीने को सोम तरस रहा
तृसित आत्मा, हे दयानिधे!
करो दूर पिपासु की तृषा (2)
आनन्द क्यों न बरसाता? ॥भूले को॥
जब पाप वासनाएँ जगें
जब आत्मा दुरितों में फँसे
उस वक्त सोम-प्रभु मेरे
ना देखते रहना खड़े
जीवन की उलझन से पहले
मुझे थाम लेना दाता॥ ॥भूले को॥
तुम त्वरित प्रभु मुझसे मिलो
फिर मेरे उद्धारक बनो
दुरितों से पार, प्रभु करो (2)
तुम मेरे अग्रगामी बनो
ओर पाप ताप तुम्हीं हरो
पाऊँ तुम्हारी ही पात्रता॥ ॥भूले को॥
मार्गज्ञ तुम जितने बड़े
क्या अन्य हो सकता अरे!
दिग्भ्रान्त को देते दिशा
तुम हो अनन्य परमात्मा
अपने कुतुबनुमा यन्त्र की (2)
सुई से सही मारग दिखा॥ ॥भूले को॥

(लक्ष्य) उद्देश्य। (मार्गज्ञ) मार्ग का जानकर। (तृषा) प्यास। (दिग्भ्रान्त) दिशा का जिसको भ्रम हुआ हो। (त्वरित) तुरन्त जल्दी। (दुरित) बुराई, कुमार्ग, पाप

48. विश्व साम्राज्ञी की वाणी

अहं राष्ट्रीं संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥ *ऋ. १०.१२५.३*

तर्जः *तू सुखकर्ता सिद्धि विनायक*

मैं सुखदायक अधीश्वरी हूँ मैं राष्ट्री हूँ मैं प्रज्ञा
सकल ब्रह्माण्ड में शासन मेरा, कराती हूँ संगम वस्तुओं का ॥मैं सुखदायक॥

वसुओं में एकसूत्रता मेरी सब नियमों की रचयिता॥
सूर्य-अग्नि और पवन शक्ति से मैंने पर्जन्यों को भरा॥ ॥मैं सुखदायक॥

पर्जन्यो वर्षित जल ने हर ली पृथ्वी की तृष्णा
उठा उठा के जल सागर से किया धरणी को हरा-भरा॥ ॥मैं सुखदायक॥

सूर्याकर्षण-शक्ति से पिण्डों को दी है परिक्रमा
है आधार अदृष्य परन्तु यह आधार है मेरी मया॥ ॥मैं सुखदायक॥

वेदवती मैं ज्ञानमयी हूँ मुझे विश्व-कणकण का ज्ञान
अपनी सन्तानों का मङ्गल करती हूँ वेदों से सदा॥ ॥मैं सुखदायक॥

सर्वाधिक पूजनियों में पूज्या, याज्ञिकों में हूँ प्रथमा।
माता-पिता-आचार्य-अतिथि की मेरे बाद होती पूजा॥ ॥मैं सुखदायक॥

मैं हूँ स्थित अनगिन रूपों में 'भूरिस्थात्रा' इक नाम प्रथित
पालन जनन संहारक शक्ति है मेरी ही अधिकारिता॥ ॥मैं सुखदायक॥

एक रूप दयामय देवी का एक न्याय-अधिष्ठात्री का
एक रूप सुखद माङ्गलिक, ध्यान रखूँ शरणागत का॥ ॥मैं सुखदायक॥

सिन्धु-गिरी-सरिता का स्थापन यथा समय कालों में किया।
रवि-शशि वर्षित मेघमण्डल सब मेरी ही है कृत कृत्यता॥
भूमि में सोने-चाँदी रत्नों की खानें स्थापित की
और भूतल पे वृक्ष वनस्पति द्वारा करूँ मानवीय सेवा॥ ॥मैं सुखदायक॥

मैं महिमामयी निज भक्तों का ध्यान निरन्तर रखती हूँ।
भक्त देव जन विविध रूप से प्रीत-स्मरण करते मेरा॥ ॥मैं सुखदायक॥

धन्य यदि होना चाहो तो सतत् मेरा ही स्मरण करो
दौड़ के आऊँगी सुध लेने पूर्ण करुँगी प्रत्याशा॥ ॥मैं सुखदायक॥

(राष्ट्री) जगदीश्वरी, विश्व साम्राज्ञी। (अधिष्ठात्री) कार्य का निरीक्षण करने वाली। (प्रज्ञा) ज्ञान, बुद्धि, सरस्वती। (प्रत्याशा) आकाँक्षा, भरोसा। (वसु) ऐश्वर्यों का अपने अन्दर बसाने वाला। (पर्जन्य) बादल, मेघ। (धरणी) धरती। (भूरिस्थात्रा) बहुत रूपों में स्थित। (प्रथित) प्रसिद्ध।

49. तप की महिमा

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत॥ *साम. ५६५.८७५*

तर्जः तू सूखकर्ता सिद्धि विनायक

अङ्ग-अङ्ग में संग लगा प्रभु फिर भी न क्यों दर्शन होते।
कच्चे तन वाले मानव (2) सर्वत्र वितत-प्रभु को खोते॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

बनता है कुन्दन तब ही जब स्वर्ण अग्नि में जा के तपे,
तपी जो भट्टी में न तपते कभी न बन पाते चोखे॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

बह्मानन्द का रस भर जाये तपी आत्मा पक जाये
टिक नहीं सकता पानी यदि मिट्टी के घड़े कच्चे होते॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

जो हैं तपस्वी प्रवर ज्ञानमय करते हैं सत्कार ऋतों का
धूर्त लोग क्या इन्हें दबायें? सत्य से दृढ़ ये तपी अनोखे॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

ऋत-स्वाध्याय महातप तीनों करते हमारा ही उत्थान।
शान्त ही रहना, शम से कहना, ये हैं सुलक्षण तपों के॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

अतिथि-यज्ञ व ज्ञान ग्रहण फिर ज्ञानदान है अद्भुत तप।
पैदा करो सुसन्तति उनमें भाव जगाओ नियमों के॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

कर स्वाध्याय प्रवचन किये बिन तप रह जाते हैं अधूरे
नित्य प्रति स्वाध्याय जो करते नख से शिख तक प्रज्ञ होते॥
॥अङ्ग-अङ्ग॥

आओ परिपूरित हों, तप से परिपूरित प्रभु को हम वर लें।
उज्जवल, उपम, उदित, उद्धव बन क्यों ना हम आनन्द भोगें?
॥अङ्ग-अङ्ग॥

(वितत) विस्तृत, विशाल। (धूर्त) कपटी। (सुसंतति) अच्छी सन्तान। (कुन्दन) सोना, स्वर्ण। (अनोखे) अद्भुत, विचित्र। (तपित) तपना, गरम होना। (दृढ़) मजबूत। (नख से शिख) पूरी तरह। (तपी) तप करने वाला। (उत्थान) उपर उठना। (परिपूरित) परिपूर्ण। (चोखा) निर्मल शुद्ध, पवित्र। (शम) शान्ति। (परिपूत) परमशुद्ध। (प्रवर) श्रेष्ठ, उत्तम। (सुलक्षण) अच्छे लक्षण। (उपम) सबसे ऊपर, सर्वोत्तम। (सत्कार) सेवा करना। (आतिथियज्ञ) मेहमानों की सेवा। (उदित) उदय होना। (ऋत) सृष्टि के सत्य नियम। (प्रज्ञ) विद्वान, बुद्धिमान।

50. तू सचमुच अमर है

यद्धा॑ प्रवृद्ध सत्यते॒ न म॑रा॒ इति॒ मन्य॑से। उ॒तो तत् स॒ सत्यमित् तव॑॥

ऋ. ८.९३.५

तर्जः *तेरी वन्नु मुगिले मळ तूवलम करमो*

जग में जो भी जन्मा, इक दिन तो नष्ट होना है।
नियम जब ये शाश्वत, फिर काहे का रोना है।
है इन्द्र अमर खिलाड़ी जग का खेल खिलौना है॥

ये सूरज ये चाँद या तारे ये पर्वत सागर वन सारे
होंगे विनाश इक दिन सृष्टि नियम हैं न्यारे
शतशत कोटि वर्षों से जो पिण्ड विद्यमान हैं सारे
इक दिन विनाश लीला में शामिल तो होना है॥ संसार...

ये गज पक्षी मृग सिंह मूस, कर जायेंगे सब कूच
सब प्राणियों में विलक्षण मानव भी जायेंगे छूट
बड़े बड़े सूरमा राजा जिससे थर्राता ज़माना
ऐसे सम्राटों को भी काल कवलित होना है ॥ संसार...

हे सर्वोपरि प्रवृद्ध श्रेष्ठों के पालक सत्पति?
सृष्टि के अमर तत्व भी पाते हैं तव अनुमति
मैं मरता नहीं कभी भी ईश्वर का कथन सत्य है
मगर आत्मा का ये जन्म मृत्यु का ही खिलौना है ॥ संसार...

अमर आप जैसा इस ब्रह्माण्ड में ना कथनीय
अमरता औरों की आपके सामने है उपहसनीय
अखण्ड अमरता आपकी है सदा उपासनीय
आपकी अमरता पर तो नित्य सत् सलोना है ॥ संसार...

(काल कवलित) काल द्वारा निगला हुआ। (अनुमति) आज्ञा, सम्मति सलाह। (प्रवृद्ध) अच्छी तरह बढ़ा हुआ। (उपहसनीय) हँसी उड़ाने लायक। (उपासनीय) आराध्य, पूजनीय, उपासना किये जाने योग्य। (सलोना) सुन्दर, रसीला।

51. अजन्मा प्रजापति

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं पश्यन्ति धीरस्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ *यजु. ३१.१९*

राग : जोग

तर्ज : *तोम तोम तित्तित तोम पलईविल इरितम सन्दित्तोम*

ओ३म् ओ३म् ओ३म् हो ओ३म्,
डोलो झूमो गाओ ओ३म्,
ओ३म् नाम का अमृत सोम
घोले मन चित्त रोम रोम
ओ३म् नाम है अक्षर अनवर जिसमें छाया विस्तृत व्योम
भूतों भवनों का वो स्वामी प्रजापति हम सबका कौन?
जो कुछ पाते हम संसारी ओ३म् ही देता होके मौन
॥ओ३म् ओ३म्॥

नित्य नूतन,सृष्टि, सर्जन, नित्य पालन नित्य रक्षण।
है त्रिलोकी, आत्म द्योतित पाले स्थावर और जङ्गम
सर्वव्यापक वो अजन्मा, उसकी सत्ता वही प्रमाण
सबकी आत्मा सबकी ज्योति, उसी विधाता का है विधान
उसको हर कोई चाहे पाना इसलिये उसे ढूँढे ज़माना
उसे देख पाते ध्यानी जन, उसका हर शै में ठिकाना
ध्यानी रमाते उसकी धुन, दिव्य शक्ति से लेते सुन
आशुतोष प्रभु उनके बनते, प्रेम से पिघले जैसे मोम
॥ओ३म् ओ३म्॥

हर दिशाओं विदिशाओं में विराजमान हैं वो
विद्यमान हैं सदा से सिद्ध प्रसिद्ध सर्वदा जो
काल ऐसा है न कोई ईश्वर जिसमें रहता ना हो
ना पड़े वो बन्धनों में है अजन्मा सदा से वो
कौन सी ऐसी जगह है? विद्यमान जिसमें न वो
वो है सबका प्रजापति और हम सब उसकी प्रजा
चाहेगा जो प्रजापति को, मानव कर्म करे ना विलोम।
ध्यानी के शुभकर्म में होगा ध्यान प्रभु का ओ३म् ही ओ३म्
॥ओ३म् ओ३म्॥

(शै) वस्तु (विलोम) विपरीत

52. प्राणपान का रथ

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो। व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक्॥

ऋ. १.१५७.१

तर्जः *तोया तोया अनवत्तोया*

जागो जागो नींद से जागो
जागो जागो, सूर्य क्षितिज से उदित हुआ
आह्लादक उषा ने तमस् विच्छिन्न किया॥
प्राणी जगत में छाया समां चहल पहल का
और तरुवर झूमे सुरभित उपवन महक रहा
॥जागो जागो॥
आह्लादक है चारु प्रभा मानव क्यों तू सोया पड़ा
चादर-तमस् उतार के फेंक, निज शरीर के रथ को देख
युगल अश्व हैं प्राणायाम, शरीर रथ बनता गतिमान
सन्ध्या वन्दन, अग्नि होत्र कर, योगांगों का तू अभ्यास कर
यज्ञ कर योगासन कर, दान अरु अध्ययन कर
तुझमें ओर पशुओं में तो है बड़ा ही अन्तर,
अल्पज्ञान उनमें तू ज्ञानी धन्वन्तर,
सत्कर्मों के लिये है मानव योनी बेहतर॥
॥जागो जागो॥
सब कवियों का यही कथन, कला संगीत साहित्योत्तम,
जो इन सबसे रहा विहीन, पशु है वो बिन पूँछ व सींग,
अश्वी-युगल ये प्राणपान, पशुपक्षी कर लेते आम,
मानव तो निज इच्छित बल से अश्वी-युगल से बनते अव्वल
भाग्य से मिले ये चालक, प्रेरित कर इन्हें, प्राजक!
तुमको उत्कृष्ट दिशा में आया है रथ ले जाने
इसका सुखद सेवन करना, बढ़ते जाना
जागरुक उद्बुद्ध उच्च हो उड़ते जाना॥
॥जागो जागो॥

(क्षितिज) जहाँ पृथ्वी आकाश मिलते दिखते हैं (युगल) जोड़ा (तमस्) अन्धकार (अरु) और (विच्छिन्न) छिन्न-भिन्न करना (अव्वल) श्रेष्ठ (सुरभित) सुगन्धित (प्राज्ञक) बुद्धिमान, समझदार (चारु) सुन्दर (उत्कृष्ट) सर्वोत्तम (प्रभा) चमक (उद्बुद्ध) जागा हुआ

53. उसके सुमति और सौमनस्य हमें प्राप्त हों

जन्मंजन्मन्निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम॥ *ऋ. ३.१.२१*

तर्जः ***1. तोलकौ मिनी करे नीलाम, 2. मनसुन्न उन्नदी चिपाल***

हे प्रभु प्रेरक, सुमति प्रदीपक, सुमति प्रदान करो,
हृदय-मन्दिर में सदाशयता का नैवैद्य पान करो,
पुष्प लो भक्ति के, दूर करो दुर्मति ये, दुःख तम ना हमको सता दें,
होते ही सूर्योदय अन्धकार भागे, पायें ज्योति भाग्य जागे
ऊषा बन आ जाओ, सुमति जगा जाओ, जीवनोत्थान करो॥ ॥हे प्रभु प्रेरक॥

नदियों की लहरों में तू
गिरियों की चट्टानों में तू
भूमि, आकाश में भी है तू
तरु, वल्लरियों में भी तू
रवि चन्द्र तारों में भी तू
मन वाणी चक्षु श्रोत्र में तू
रक्त संस्थान प्राण श्वासों में भी तू
आत्मा मस्तिष्क कण कण में है तू
अपनी अजस्त्र स्त्रावणी धारा बन के
सबके हृदयों में बहो॥ ॥हे प्रभु प्रेरक॥

आओ विश्वामित्र बनकर
उस याजक की मिलकर
हार्दिक पूजा हम सब करें
मानव मानव से मिलकर
सबके हृदय में बसकर
सच्चा, प्रेम प्रभु से करें
ज्योति सौहार्द की सब में जगाकर
प्रभु के चरणों में हम सब रहें
हृदय के हर कोने-कोने को प्रभुजी
आकर प्रदीप्त करो॥ ॥हे प्रभु प्रेरक॥

(प्रदीपक) उजागर करने वाला। (सदाशयता) उच्च विचार रखने वाला। (नैवेद्य) देवों पे चढ़ाने वाली आहुति।

54. सबको भरते हो हमें भी भरो

गम्भीराँ उदधीरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत॥ *ऋ. ३.४५.३*

तर्जः ***त्या तरु तळी विसरले गीत***

हे इन्द्र! भरो हृदय में प्रीत
परिपूर्ण, ब्रह्माण्ड के स्वामी (2)
हमें भी दो आशीश॥ ॥हे इन्द्र॥

मूक हृदय में प्रेम भावना स्वरों में है प्रस्तव प्रार्थना(2)
भावभीने तेरे याज्ञिक नीक
अर्पित भाव विनीत॥ ॥हे इन्द्र॥

वर्षा जल से सागर भरते भाप उठे बादल से बरसें
ग्रह उपग्रह नक्षत्र रवि शशि(2)
किये आकाश में नीत॥ ॥हे इन्द्र॥

रंग बिरंगे कुसुम खिलाये भूमि-वक्ष में रत्न गड़ाये
हरियाली से धरा सजाये(2)
कूप में भरा जल नीक॥ ॥हे इन्द्र॥

औषध, फल वृक्ष सब उगाते घास-गलीचे धरा पे सजाते
रस भरपूर फलों से सरसे (2)
मीठास भरी है ईख॥ ॥हे इन्द्र॥

तुम्हीं ने सूर्य में ताप भरा है चाँद में चान्दनी की छटा है
चमकें जगमग नभ में तारे(2)
जैसे चमकें दीप॥ ॥हे इन्द्र॥

याजकों को समृद्धि दी है त्यागियों की भी यश कीर्ति है
याजक की जन जन से प्रीति
वही है प्रभु का मीत॥ ॥हे इन्द्र॥

उद्यमीजन दीनों के रक्षक पुरुषार्थी बने सबके पक्षक
सुख से उनकी झोली भरो
और दे दो हमें अभीष्ट॥ ॥हे इन्द्र॥

(प्रस्तव) स्तुति, प्रशंसा। (नीक) स्वच्छ। (ईख) गन्ना। (नीत) स्थापित। (विनीत) विनम्र। (कूप) कूआँ। (याजक) यज्ञ करने वाला। (पक्षक) सहाय, सहायक। (छटा) प्रकाश, प्रभा, शोभा, सौन्दर्य, छवि। (अभीष्ट) मनचाहा, मनवाञ्छित। (उद्यमी) मेहनती। (पुरुषार्थी) प्रयत्न या कोशिश करने वाले।

55. मनीषा धेनु का दूध

प्र मे॑ विवि॒क्वाँ, अ॑विदन्मनी॒षां धे॒नुं चर॑न्ती॒ं प्रयु॑ता॒मगो॑पाम्।
स॒द्यश्चि द्या दु॑दु॒हे भूरि॑ धा॒सेरिन्द्र॒स्तद॒ग्निः प॑नि॒तारो॑ अस्याः॥ *ऋ. ३.५७.१*

तर्जः *थकले रे नन्दलाला*

परम विवेकी प्रभु ने दे दी, मनीषा रूपी ज्वाला॥
जगत का प्रभु रखवाला॥ ॥परम॥

एक अकेली गाय जंगल में विचर रही है अचेती,
दूध तो झट से देती माता, बहुत अधिक दे देती,
जंगल-घास मिले चर लेती खुला ही जल पी डाला॥ ॥परम॥

हम भी चाहें ऐसी गैया, खर्च करें ना धेला
खुले जलाशय जल पी लेवे, और दे दूध घनेरा
हींग लगे ना फिटकरी रंग चोखा कर डाला॥ ॥परम॥

कब से सुन्दर गाय-विवेकी प्रभु ने दान में दी है,
यही मनीषारूपिणी धेनु मन की जो संगिनी है,
खाने, पीने का ना खर्च है ज्ञान-दुग्ध भी आला॥ ॥परम॥

मन इत उत सब दिशा में फिरकर कई विचार ले आता
मनीषा को तो निज विवेक का खण्डन मण्डन भाता
पुरुष-प्रबुद्ध विवेकी, खोजें हरदम नया उजाला॥ ॥परम॥

जो बुद्धि को सही बरतता वही मनीषी कहलाये
ज्ञान दुग्ध पीकर के अतिशय बलशाली बन जायें
मानव ने तो नभ-भूमि का नाप तौल कर डाला॥ ॥परम॥

सूर्य की दूरी परिधि घनफल और आकार को समझा,
वर्षा आँधी भूकम्पों के झटकों को भी परखा,
सूर्य-चन्द्र की दशा, ग्रहण को जाना, देखा भाला ॥परम॥

झंझावत ज्वार और भाटा सबकी खबर ले आये,
रजत स्वर्ण भूमि के गर्भ में कहाँ पड़े हैं दिखाये,
मिट्टीका भी तेल कहाँ और कहाँ है कोयला काला॥ ॥परम॥

नभ में कृत्रिम गृह को छोड़ा, मंगलग्रह की सोची,
गगनभेदी यानों में बैठ के भूमि चन्द्र की खोजी,
बुद्धि के इस बल ने अब तक मानव मात्र सम्भाला॥ ॥परम॥

खगोल, चिकित्सा, सिन्धु, भूगर्भ विषय ज्ञान को जाना,
मनोविज्ञान व मन्त्रविज्ञान की चरम उन्नति पाना
जब तक थे अन्जान तथ्य, गले उतरा नहीं निवाला॥ ॥परम॥

दुरुपयोग जो हुआ भविष्य में दूध में ज़हर मिलेगा
मारेगा दुधारी गाय तो घातिनी मौत मरेगा
फिर समझो सारी धरणी को निगल जायेगी ज्वाला ॥परम॥

आओ ईश्वर की इस देन का लाभ उठायें घनेरा,
मन से मन का मेल करे और करे ना तेरा मेरा।
गले में डालें सभी परस्पर प्रेम की मङ्गल माला॥ ॥परम॥

(मनीषा) बुद्धि। (अचेती) व्याकुल, व्यग्र। (धेनु) गाय, मनीषा। (आला) उत्तम। (धरणी) पृथ्वी। (प्रबुद्ध) बुद्धिमान, प्रकाशमान। (झंझावत) वर्षा के साथ तीव्र आँधी। (कृत्रिम) बनावटी। (निवाला) कौर, ग्रास। (घातिनी) हत्यारी। (दुधारी) दूध देने वाली। (घनेरा) अत्यधिक।

56. तेरे नाम को जपता हूँ

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिम सूर्यस्य विद्वान।

सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि।। *ऋ. ७.२२.५, साम. १७६६*

तर्जः *दयाघना करुणा करी गोपाळ*

दयाकर करुणामय दातार॥
तेरे दर्श का प्यासा हूँ प्रभु, सुन ले मेरी पुकार
मात पिता बन्धु बाँधव की सुनी अनसुनी कर दूँ बातें
तेरी वाणी सुनने को मन तरसे बारम्बार ॥दयाकर॥

प्रबल तरंगे स्वरमय उपजें सावधान कानों को कर दें
ऐसे सौभाग्यों को तू ही, कर देता साकार ॥दयाकर॥

वर्तमान या संचित कर्म हों तुझसे छिपा ना सब कुछ जाने
सूनूँ सर्वदा तेरी वाणी जो जीवन आधार ॥दयाकर॥

तेरी सात्विक वाणी का प्रभु तिरस्कार ना करुँ जीवन में
प्यार विचार आचार व्यवहार हो तदनुसार प्रचार ॥दयाकर॥

प्रलय तू चाहे पल में कर दे, सृष्टि चाहे पल में घड़ दे
तेरे गुण गिन सके ना कोई तेरी महिमा अपार ॥दयाकर॥

सिरजनहार तू पालन कर्ता स्तुत्य हृदय से तुझको जपता
फिर भी हूँ अल्पज्ञ प्रभु मैं मन में कई विकार ॥दयाकर॥

हो सकता अज्ञान के कारण सुन आदेश ना समझ सकूँ मैं।
किया अनिष्ट तो खाई ठोकर, यही समझा हरबार। ॥दयाकर॥

मैं तो अघट रहा अज्ञानी तेरी न महिमा जान सका प्रभु
बुद्धिमान ही तुझे पुकारें तेरी कीर्ति अपार ॥दयाकर॥

कीर्तिशाली प्रभु मुझे बचाओ टेर सुनो मेरी प्यास बुझाओ
नाम जपूँ मैं हरदम तेरा तू प्रभु तारनहार ॥दयाकर॥

(अघट) अयोग्य (आदेश) आज्ञा।

57. वरेण्य धन दो

यन्मन्यसे॒ वरे॑ण्य॒मिन्द्र॒ द्यु॒क्षं तदा भ॑र।
वि॒द्याम॒ तस्य॑ ते व॒यमकू॑पारस्य दा॒वने॑॥ *ऋ. ५.३९.२*

तर्जः *दरशन पाये* मोरे प्रियतम श्याम मुरारी

धन दो वरेण्य ही सारे जागें भाग्य हमारे,
बाकी धन माटी के ढ़ेर काम ना आये हमारे॥ ॥धन दो॥

मूढ़मति हम कछु ना जाने, सच्चा सुभग धन क्या है?
तेजस्वी धन का आगम हो, तेरा भण्डार भरा है,
धन-घन वर्षक
मन का हर्षक
बरसो सर्वत
हे प्रतिपाल!
करो निर्भय
और निर्भ्रान्ति
चहुँ दिसी फैले प्रकाश
हरे विषाद
इन्द्र प्यारे॥ ॥धन दो॥

कुत्सित धन से हमें बचाना ना ही प्रलोभन आये
मन शरीर आत्मा हो उन्नत और कल्याण हो जाये
हे द्युति धारक,
अघ दुःखवारक
करें तव स्वागत
वरेण्य सखा
धन जो आप्त
कर लें प्राप्त
द्युतिमय भरे जो तेज
बढ़े विवेक
इन्द्र प्यारे ॥धन दो॥

(वरेण्य) वरने योग्य। (सुभग) भाग्यवान। (आगम) आना। (निर्भ्रान्ति) संशय रहित। (कुत्सित) निन्दित, अधम, नीच। (प्रलोभन) लालच। (द्युति) चमक, आभा। (अघ) पाप। (आप्त) विश्वसनीय। (विवेक) सत्य ज्ञान।

58. दिव्य सम्पत्ति

परि द्युक्षः सनद्रयिर्भरद्वाज नो अन्धसा। सुवानो अर्ष पवित्र आ॥

ऋ. ९.५२.१, साम. ४९६

तर्जः *दरसन पाये मोरे प्रियतम श्याम मुरारी*

गीत तुम्हारा सोहे,
हे मोहन! मन मोहे
नाचे ताल में रोम रोम मन
प्रभु की प्रीत संजोये

॥गीत तुम्हारा॥

सोम टपकता हृद चलनी में अङ्ग अङ्ग छलकाये
भक्तिभाव में भीज रहा हूँ रोम-रोम हर्षाये
पल पल छिन-छिन घड़ी घड़ी निशदिन
देह स्फूर्ति का घर बन जाये
हरेक श्वास जीवन आस
मधुमय सकल विश्व, ज्योति सिक्त दिशा उमड़े॥

॥गीत तुम्हारा॥

भक्त की ओर झुक रहीं मानों सम्पत्ति लिए दिशायें,
द्युः ने मानो धरणी-स्थान ले भर दीं सब आशायें
पल पल छिन-छिन घड़ी-घड़ी निशदिन देह, स्फूर्ति का घर बन जाये
हरेक श्वास जीवन आस
मधुमय सकल विश्व, ज्योतिसिक्त
दिशा उमड़े

॥गीत तुम्हारा॥

सारा विश्व ये बना गीतमय गीत और ज्योति सजाये
इसी तरङ्गमय सतत् प्रवाह में जीवन रस टपकाये
पल पल छिन-छिन घड़ी-घड़ी निशदिन
देह, स्फूर्ति का घर बन जाये
हरेक श्वास जीवन आस
मधुमय सकल विश्व, ज्योतिसिक्त
दिशा उमड़े

॥गीत तुम्हारा॥

यही सरस रस सोम-सुरीला हृदय पवित्र बनाये,
सात्विक स्नेह की अद्‌भुत चलनी सारे मलों को हटाये
पल पल छिन-छिन घड़ी-घड़ी निशदिन
देह, स्फूर्ति का घर बन जाये
हरेक श्वास जीवन आस
मधुमय सकल विश्व, ज्योतिसिक्त
दिशा उमड़े

॥गीत तुम्हारा॥

आओ सोम! निजदल-बल लेके, चहुँ ओर छा जाओ
पृथ्वी और आकाश गूँजा दो, संजीवन रस लाओ।
पल पल छिन-छिन घड़ी-घड़ी निशदिन
देह, स्फूर्ति का घर बन जाये
हरेक श्वास जीवन आस
मधुमय सकल विश्व, ज्योतिसिक्त
दिशा उमड़े

॥गीत तुम्हारा॥

(चलनी) झरना। (सिक्त) भीगा हुआ।

59. भगवान की महिमा का निदान

व॒वक्ष इन्द्रो अमि॑तमृजीष्यु॒र्व॑मे आ पप्रौ शेदेसी महि॒त्वा।
अत॑श्चिदस्य महि॒मा वि रे॑च्य॒भि यो विश्वा॒ भुव॑ना बभूव॑॥ *ऋ. ४.१६.५*

तर्जः ***दश दिशातुनी रंगमेध नजराणो***

जीव प्रकृति ईश्वर तीनों अनादि
जीव प्रकृति के आश्रय प्रभु अविनाशी
अमित का धारणकर्ता ईश्वर
जग विज्ञात प्रतापी
॥जीव प्रकृति॥

प्रभु असीम को धारे और असीम गुण सारे
जीव के सीमित ज्ञान कर्म भी रहते प्रभु आधारे
सरल हृदय सर्वोन्नति साधक लोकलोकान्तर वासी॥
॥जीव प्रकृति॥

अल्पज्ञ, एकदेशी, ये जीव सूक्ष्मतर है
और ईश्वर, सर्वव्यापक निज महत्व पर ही है।
इक अल्पज्ञ ससीम जीव, इक प्रभु अनन्त अतापी ॥
॥जीव प्रकृति॥

व्यापक नहीं है केवल विश्व ब्रह्माण्ड में ही
अन्दर है बाहर भी व्याप्त महान विदेही
है उत्कर्ष महान ज्ञानकृत सब जीवों का उपासी॥
॥जीव प्रकृति॥

(अमित) असीम, अपरिमित, बहुत अधिक (ससीम) सीमित (अतापी) शान्त उद्वेगहीन (उपासी) उपासना करने योग्य (विदेही) बिना देह का। (निदान) शुद्धि।

60. सत्य का सूर्य

सा मा सत्योक्ति पातु, विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानिष्ट
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेतिं सूर्यः।

ऋ. १०.३७.२

तर्जः *दादलेला पावसानी*

सत्य भाषण का ही व्रत मेरे हृदय में घर करे
ये महाव्रत सब तरफ मेरी रक्षा, ही करें॥ ॥सत्य भाषण॥

झूठ के बिना चल सके ना काम, दुनियाँ कहती
क्योंकि सोचा झूठ में ही रक्षा, सुविधा मिल सकी
किन्तु मैं महसूस करता सत्य ही उन्नत करे॥ ॥ये महाव्रत॥

हे प्रभु सत्यस्वरूप जो विशुद्ध प्रकाशरूप
जिस प्रकाश से जगमगायें तीन लोक जो हैं त्रिरूप
पृथ्वी द्युः अन्तरिक्ष में सत्य की ज्योति जले॥ ॥ये महाव्रत॥

सत्य ही केवल प्रकाश है और असत्य है अन्धकार
कैसे रक्षा कर सके अन्धकार तो है कारागार
है सनातन सत्य पर असत्य तो टिक न सके॥ ॥ये महाव्रत॥

जो असत्य को पालते हैं वो अभय होते नहीं
और प्रेमी सत्य की विपदा से घबराते नहीं
सत्यवादी सत्यकलश में पुण्य का अमृत भरे॥ ॥ये महाव्रत॥

शक्तिशाली वो असत्य जो दीखता चाहे बड़ा।
कुछ ही कालान्तर में दीखे वो भी औंधे मुँह पड़ा।
राख होकर मिट ही जाता है असत्य खड़े खड़े॥ ॥ये महाव्रत॥

सत्य नियमों को कभी कोई दबा सकता नहीं।
घोर से घोर हो रात्री, सूर्य डरा करता नहीं।
तोड़कर अनृत के घेरे सत्य ही ज्योति करे॥ ॥ये महाव्रत॥

बह रहा है अनवरत ये सत्य नियमों का प्रवाह
देखा दिन प्रतिदिन उदित इस सूर्य का अनुपम स्वभाव,
सत्य का ही सूर्य मङ्गल शान्ति सुख वैभव भरे॥ ॥ये महाव्रत॥

61. द्वेषी हमारी हिंसा न कर सकें

मा नः समस्य दूढ्यः१ परिद्वेषसो अंहतिः। ऊर्मिर्न नावमा वधीत्।

ऋ. ८.७५.९

तर्जः *दिल जलेगा तो ज़माने में उजाला (राग-भैरवी)*

द्वेष भावों से बचो, मन में उजाला होगा (2)
प्रेम भावों से भरा भक्त निराला होगा॥
॥द्वेष भावों से॥

लोग अक्सर किसी सत्कर्मी से करते हैं द्वेष (2)
उनकी बातें ना मान जाएँ तो कर देते हैं क्लेश
उनकी दुर्भावना दुश्चिन्तनों में है छल-कपट
वे किसी धर्म परायण को देंगे कैसे मदद
दिलजलों की जलन का मन भी तो काला होगा॥
॥द्वेष भावों से॥

करना चाहें यदि हम दुःखियों की मृदु मन से मदद (2)
द्वेषी कह देंगे इन्हें मरने दो ये हैं बदकिस्मत
हो ना जाये किसी के हाथ से दुःखियों का भला
ना किया खुद ने भला, जिसने किया, उस पे जला
द्वेष का दाव ही द्वेषी का निवाला होगा।
॥द्वेष भावों से॥

अनगिनत द्वेषी हैं बोलो भला किस-किस से बचें? (2)
हम अकेले पड़े हैं द्वेषियों की भीड़ तले
जो सलाह मान ली उनकी तो जीते जी ही मरे
कैसे जीवन की नाव डूबने के भय से बचे
ना सम्भल पाये तो जीवन का दिवाला होगा॥
॥द्वेष भावों से॥

तेजस्वी देवों के अग्निस्वरूप परमात्मन्!
हममें उत्पन्न करो वो बल के जिसमें हो संयम
लाख द्वेषी भी रोक पायेंगे ना बढ़ते कदम
अन्तरात्मा में प्रेम-ऊर्मियों का होवे सृजन
लक्ष्यवालों को तो तुमने ही सँभाला होगा॥
॥द्वेष भावों से॥

(दिल जले) द्वेष करने वाले। (ऊर्मियाँ) प्रकाश किरणें।

62. सुनहरा चश्मा

३ १ २ ३ १२ ३१ २२
पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
१ २ ३१ २ र ३१२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १२
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः

ऋ. ९.१०७.४, साम. ५११, ६७५

तर्जः *दिल में एक लहर सी उठी* है

मन में इक तरंग सी उठी है अभी
इससे पहले कभी भी यूँ ना उठी
मन में...

पहना है आत्माराम ने चश्मा
है ये निर्मल न जानता रुकना
इसमें दृष्टि उमंग की है भरी॥(2)
इससे पहले...

योगियों को तो भी तरंगें पसन्द
ये तो निष्काम कर्म की थी तरंग
जिसमें आत्मा ने पाया रस था अमी॥ (2)
इससे पहले...

अब मैं चाहूँ तरंग में ही बहना
यही ओढ़न मेरा यही बिछौना
इन्द्रियाँ मेरी सब इसी में बहीं॥ (2)
इससे पहले...

ऐ मेरी जान! चित्रबर्हि तुम
हो जा संसार-चित्र में तू गुम
मूल रूप इसका जान ले तू अभी (2)
इससे पहले ...

तू भी है चित्र उस चितेरे का
चप्पा चप्पा रंगों को घेरे था
इसमें रंगरेज प्रभु की कारीगरी
इससे पहले...

(आत्माराम) वह योगी जो विश्व का आत्मरूप समझता है। (अमी) अमृत (चितेरा) रमणीय, चित्रकला का चित्रकार। (चित्र बर्हि) परमेश्वर के चित्र का आत्मसात करने वाला। (आत्मा) अग्नि। (रंगरेज) रंगने का काम करने वाला।

63. अश्वमेघ

१ २ ३ १२ ३ १ २ ५ ३१२ ३१२३१२३१२

आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुꣳरजस्तुरम।
वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥ *ऋ. ९.१०८.७, साम. ५८०,१३९४*

तर्जः *दिल मेरे गाएजा मन रोये जा*

ओ३म् ओ३म् गायेजा स्वर सजाए जा (2)
ओ३म् ही ओ३म् गुञ्जार में लहर जगाए जा॥
गाएजा गाएजा ऽऽऽ

सप्तऋषि जब मिल गाएँ]2
आकाश पृथ्वी को गुञ्जाएँ]
आऽऽऽ लोक लोकानतर भीतर हो उठे (2)
कहे झूम मेघ वाह! वाह!

ओ३म् ओ३म्...

सात स्वरों की सात्विक इन्द्रियों]2
स्तुति सोम संगीत व्याप्त करो]
आऽऽऽ...मेघों की गर्जन सरित-धार का (2)
सागर की लहरों का संगीत जगा॥

ओ३म् ओ३म्...

स्तुति संगीत का चहुँ ओर से]2
कर लो सवन तान स्वर ताल का]
आऽऽऽ...अश्व बना अपने संगीत को (2)
और अश्वमेघ तू विजयी रचा॥

ओ३म् ओ३म्...

हे इन्द्रियो! शरण लो ओ३म् की]2
भक्ति दो निज अश्व को सोम की]
आऽऽऽ...रंग रूप जाति के और देश के (2)
भेद हटा मित्रता स्वर में ला॥

ओ३म् ओ३म्...

(अश्व) बलदायी, घोड़ा। (अश्वमेघ) संसार को संगीत के माध्यम से, भक्ति के द्वारा सारे विश्व को अपना बनाने का यज्ञ।

64. प्राणों को कोई सुनता है

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम्॥

ऋ. १.३७.१३

तर्जः *दिसते मझला सुख चे रनवे*

है विश्व एक वैचित्र्य भंडार
और मानव देह भी लघु संसार॥

॥है विश्व॥

ये स्पर्श, शब्द, रस, रूप गन्ध
हैं कर्मेन्द्रियों की आसक्ति
किन्तु प्राण हैं अनासक्त
जिनमें है निरन्तर जागृति
प्रथिप्रज्ञ ये हैं हितकर (2)
बड़े ही पक्के हैं पहरेदार॥

॥है विश्व॥

प्राण सदा चलते ही रहते
जो संदेश के वाहक हैं
विरला कोई सुनता इनकी
प्राण पवित-पृथु पालक हैं
प्राणों को दे के आयाम तुम (2)
करो देवता सा व्यवहार॥

॥है विश्व॥

एक पहर भर अडोल आसन।
निरुद्ध प्राण और दृढ़ संयम
कर देते हैं सुषुम्ना जाग्रत
अनुभव पाते हैं अनुपम
निज अनुभव की पुष्टि करके (2)
जागृत कर दो सारा संसार॥

॥है विश्व॥

(पवित) निर्मल (पृथु) प्रसिद्ध, (आयाम) विस्तार (अड़ोल) स्थिर (निरुद्ध) रोका हुआ।

65. कर्म करते जीवन बिता

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।

एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते **नरे** ॥

यजु. ४०/२

तर्जः *दीथियो साखै किया हरखियो जिन्दगी*

ऐ आर्यों कर्म करो और करो आत्मोन्नति (2)
शतवर्ष जियो स्वार्थ रहित, पाते रहो आत्मरति॥

विकर्म से दूर रहो सुकर्म से ही जीवन जियो (2)
कामनाएँ त्याग कर ईशाज्ञा का पालन करो (2)
कर्त्तव्य बुद्धि से रहो स्वतन्त्र, कर्म-बन्धन की ना हो स्थिति॥
॥हे आर्यो॥

कर्मबन्धन के कारण ही इच्छा वासना कामना (2)
होती पूरी तो मिलता है हर्ष, विषाद पाता है अन्यथा (2)
या प्रसाद या विषाद का है कारण इष्ट सिद्धि॥
॥ऐ आर्यो॥

(आत्मरति) ब्रह्मज्ञान, आत्म-आनन्द। (विषाद) दुःख।

66. अभय ज्योति

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्वा।
पाक्या चिद्यसवो धीर्या चिद्युप्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम्॥

ऋ. २.२७.११

तर्जः *दुःख माझे हे मुके*

हे अभय ज्योति तू दे, दे अभय ज्योति तू दे।
मानसिक नेत्रों के आगे आवरण है, ना दिखे॥ ॥दे अभय॥

रात अन्धेरी दूर सवेरा (2) राह दिखे है कड़ी।
नयनों के आगे है परदा (2) आई उलझन की घड़ी
दायें बायें कुछ ना दिखे (2) आस भी टूट पड़ी
रास्ता भी है अदेख॥ ॥दे अभय॥

खाता पीता चलता फिरता (2) फिर भी आज पड़ा अचेत (2)
सोच के पागल हुआ हूँ(2) ना प्रकाश करे प्रवेश
मन में अन्तरद्वन्द्व है छाया चारों ओर अतेज
ज्योति जगा दो हे सुकेत॥ ॥दे अभय॥

ज्योति-वाहक हे अदित्यो!(2) राह देखूँ पारखी
पार कर दो क्योंकि मुझमें है अभेद्य विभावरि,
है अधूरा ज्ञान मेरा (2) दो किरण ज्योतिर्मयी॥
मैं हुआ निर्बल असेग॥ ॥दे अभय॥

हे आदित्यो! सबके वासक, (2) दूर तम से तुम करो (2)
चाहे जितना हूँ अज्ञानी (2) मेरे नायक तुम बनो (2)
दो अभय ज्योति तुम्हारी (2) दृढ़ धृति का बल भी दो
ज्योति पाऊँ निःसंदेह॥ ॥दे अभय॥

(अदेख) लुप्त, छिपा। (कड़ी) कठिन। (अचेत) चेतनाशून्य। (अतेज) प्रतापहीन। (अन्तर्द्वन्द्व) मन के विचारों का संग्राम, युद्ध। (विभावरी) रात्री, अन्धकार, निशा। (असेग) असह्य, जो सहन ना हो सके। (वासक) बसने वाला। (सुकेत) सूर्य, अदित्य। (पारखी) परखने वाला, परिक्षण। (धृति) धैर्य सहनशीलता। (निःसन्देह) बिना शक का। (ज्योतिवाहक) ज्योतियों को लेजाने वाला, ज्योति-सारथि।

67. एक ही

एक॑ एवाग्निर्ब॑हुधां समि॑द्ध एकः सूर्यो विश्व॒मनु प्रभू॑तः।
एकैवोषाः सर्व॒मि॒दं वि भा॒त्येकं॒ वा इ॒दं वि ब॑भू॒व सर्व॑म् ॥

ऋ. ८.५८.२

तर्जः दे *भला दे चन्द्रिके (राग कलावती)*

एक चन्द्रमा तारागण से अधिक प्रकाशित
करता है इक वीर, रिपुदल को पराजित
इक सपूत माता-पिता का बढ़ाये गौरव (2) आ ऽऽऽ
पर कपूत में कहाँ है ऐसा जौहर
शक्ति संख्या में नहीं, गुण में प्रभावित॥

॥एक चन्द्रमा॥

एक अग्नि की विविध रूपों में प्रदीप्ति (2)
भोजनालय, यज्ञ कुण्ड, ज्वालामुखी सी
बन के विद्युत गगन में होती है विभासित॥

॥एक चन्द्रमा॥

ग प गसा नीसा, ग सा सा ग ग सा नी ग प नी ग नी
नी प ग, ग सा सा ग, नी नी ग ध ध पग, गऽ ऽ सा
नी, ध प ध, ग प ध नी सा सा।

जठराग्नि रूप में भी सुखद है 'अग्नि'
वो ही आदित्य रूप में करती है स्वस्ति
ग्रहों उपग्रहों को भी करती है तापित॥

॥एक चन्द्रमा॥

इक अकेली है तमोहारी ये उषा (2) आ ऽऽऽ
होके उद्भासित बनती है भू की पूषा
इस तरह ब्रह्म सर्वव्यापक है याज्ञिक॥

॥एक चन्द्रमा॥

एक एकाकी आत्मा भी है प्रसृमर
क्यों न बनायें प्रभु को निज सहचर
और अग्नि स्वरूप प्रभु से होवें पालित॥ ॥एक चन्द्रमा॥

(रिपुदल) शत्रुदल। (जौहर) करामात, उत्तमता। (विभासित) प्रकाशित, प्रकट। (स्वास्ति) कल्याण। (तापित) तपा हुआ। (पूषा) पोषक। (प्रसृभर) बहता हुआ।(सहचर) साथ चलने वाला।

68. श्रेष्ठ कर्म द्वारा अन्न व बल की प्राप्ति

॥ओ३म्॥ इ॒षे त्वो॒र्जे त्वा॑ वा॒यव॑ स्थ दे॒वो वः स॑वि॒ता प्रार्प॑यतु॒ श्रेष्ठ॑तमाय॒ कर्म॑ण॒ आप्या॑यध्व मध्न्या॒ प्र॒जाव॑तीरनमी॒वा अ॑य॒क्ष्मा मा व॑ स्ते॒न ई॑शत॒ माघश॑ꣳसो ध्रु॒वा अ॒स्मिन् गोप॑तौ स्यात ब॒ह्वीर्यज॑मानस्य प॒शून्पा॑हि॥

यजु. १/१

तर्जः *देवधरी मझ कदी भेटला*

देवाधिदेव सविता देव (2) अन्न प्राप्ति के तुम्हीं हो प्रेरक, (2)
अन्न उपजाते बल भी दिलाते(2) जिसमें बने ये आत्मा देवत॥
॥देवाधिदेव॥
देवाधिदेव सविता देव (2) अन्न प्राप्ति के तुम्हीं तो प्रेरक (2)
अन्न उपजाते बल भी दिलाते जिससे बने ये आत्मा देवत
॥ देवाधिदेव॥
पाँच तत्व का देह तो नश्वर(2) सदा प्राण आत्मा है अमर (2)
देह को बलवत् कर ले मानव (2) प्राण बुद्धि आत्मा कर मतिमत॥
॥ देवाधिदेव॥
प्रेरणा दो प्रभु श्रेष्ठ कर्म की (2) मन-बुद्धि ना हो विकर्म की (2)
हीन, जघन्य कर्मों से बचकर बनते रहे हम सदा देवसख॥
॥ देवाधिदेव॥
अवयव इन्द्रियाँ बलकर होवें (2) पाप ताप जीवन के धोये (2)
शारीरिक मानसिक-वैयक्तिक(2) समुदायों के होवें सम्प्रेक्षक
॥ देवाधिदेव॥
ऐ मानव! ना शक्तिहीन हो (2) प्राप्त शक्ति ना व्यर्थ क्षीण हो,
ना विनष्ट जीवन हो तुम्हारा(2), दुरित राह तज बन जा उन्नत॥
॥ देवाधिदेव॥
परमोत्तम संसति युक्त हो(2), ना क्षय रोग हो, शांति सुख हो
पापी चोर खल बने ना शाशक(2) पृथ्वी पालक होवें हितप्रद(2)
॥ देवाधिदेव॥
राज्य प्रजा सम्पन्न हों राजा, (2) दूर प्रजा की कर दे बाधा
कभी तुम्हारा धन ना लूटें,(2) मातृभूमि के होवें रक्षक
॥ देवाधिदेव॥

भाग रहा पशु जैसे इत उत,(2) इन्द्रियाँ भी ऐसी हैं परिमुक्त।
बन यजमान आत्मा संभाल ले,(2) इन्द्रियों का बन प्रवर निरीक्षक
॥ देवाधिदेव॥

दूजा, ये यजमान है याजक(2) गौ बछड़ों का है परिपालक
पाकर गौ का दूध और घृत(2) हवन से करता जाता परहित
॥ देवाधिदेव॥

तीजा, ये यजमान प्रजापति(2), राष्ट्र प्रजा की करे उन्नति,
राष्ट्र कार्य-अधिकारी पशु है (2) बनता रहा है याजक सेवक॥
॥ देवाधिदेव॥

(सम्प्रेक्षक) अच्छी तरह देखने वाला। (देवाधिदेव) सबों का देव परमात्मा। (सविता देव) जगदुत्पादक परमेश्वर, (बलवत्) शक्तिमान, मतिमत, (विकर्म) उल्टे कर्म, (जघन्य) बहुत बुरा। (देवसख) देवताओं का मित्र। (अवयव) शरीर का कोई भाग। (सम्प्रेक्षक) अच्छी तरह देखने वाला, (दुरित) पाप। (परिमुक्त) पूर्ण रूप से मुक्त (प्रवर) श्रेष्ठ, (निरीक्षक) देखरेख करने वाला, (नश्वर) नाशवान, (समुदाय) समूह, (हीन) तुच्छ। (देवत्त) देवों को अर्पण किया जाने वाला।

69. विश्व कल्याण की कामना

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्तिगाम्या जगत पुरुषभ्यः।
विश्व सुभूतं सुविदित्रं नो अस्तुज्योगेव दृशेम सूर्यम्॥

अथर्व. १.३१.४

तर्जः देवधरी मझ कदी भेटला

कर सबकी कल्याण कामना(2)
सर्वप्रथम हैं माता-पिता
ये सम्बन्ध है सबसे गहरा
की है जिन्होंने लालना पालना। ॥कर सबकी॥

कौन निष्कृति उनकी दे सके? (2)
कष्ट लिये जिन्होंने सुख देकर
माँ तो खुद गीले में सोये (2)
सूखा रहे शिशु का ये पालना (2) ॥कर सबकी॥

करो उनकी कल्याण कामना (2)
प्रतिदिन हृदय से सेवा करना(2)
पितृ यज्ञ की वेद में महिमा (2)
यही हृदय की रहे भावना (2) ॥कर सबकी॥

माता-पिता संग गौओं का धन (2)
जिससे हो समृद्ध ये तन मन(2)
दूध दही घृत से हों सम्पन्न (2)
गौ के बिन होवे कल्याण ना(2) ॥कर सबकी॥

जग-कल्याण की रहे भावना (2)
ईश तुल्य कृत कर्म सारना (2)
बन सत्कार्यों से महात्मा (2)
इसी तरह जीवन को तारना (2)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत॥

(निष्कृति) प्रतिदान, भेंट। (सारना) रक्षा करना।

70. आओ वेदाध्ययन करें

वै॒श्वा॒न॒रीं वर्च॑स॒ आ र॑भध्वं शु॒द्धा भवन्तः शु॒चय॑ः पावकाः।
इ॒हेड॑ या सध॒मादं॒ मद॑न्तो॒ ज्योक्प॑श्येम॒ सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम्॥3॥

अथर्व. ६.६२.३

तर्जः देव सन्ध्या गोकुरत्ति चारु चन्दन मेडयिल

वेद विद्या का अध्ययन कर, अर्थ जान के कर मनन
सब मनुष्यों के हित चिन्तक 'विश्वानर' के हैं वेद वचन
ब्रह्मज्ञान की दिव्य ज्योतियाँ लाती जीवन में शुद्धाचरण
सत्य ज्ञान का तेज प्राप्त कर, शुद्ध करें तन मन आत्मन्॥
वेद विद्या...

परम प्रभु तो विश्वनार हैं चाहते हैं जन जन का हित
सबके योगक्षेम अभिप्राय से वेदवाणी कर दी उपचित
नाम दिया वैश्वानरी इड़ा शुद्ध जीवन के लिये अनुमित
बन के श्रद्धालु, होके पवित्र, वेद-वाणी को करलें हम ग्रहण॥
वेद विद्या...

अर्थ बोध होने पर सुरभित वेद-लता दे पुष्प व फल
काम धेनु बन पोषक दुग्ध से शुभ इच्छायें कर दे सफल
आओ मिल के वेद पढ़ें, वेद की शिक्षा करें हम ग्रहण
वैश्वानर के, ज्ञान सूर्य से करें प्रकाशित ये हृदयांगन॥॥
वेद विद्या...

(उपचित) इकट्ठा करना। (अनुमित) हेतु द्वारा निश्चित किया हुआ। (सुरभित) सुगन्धित। (योगक्षेम) कुशलमंगल, लाभ।

71. इन्द्र की देन बड़ी भद्र है।

स॒त्यमिद्वा उ॒ तं व॒यमिन्द्रं॑ स्तवाम॒ नानृतम्
म॒हाँ असुन्वतो व॒धो भूरि॒ ज्योर्तिषि सुन्व॒न्तो भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑॥

ऋ. ८.६२.१२

तर्जः *देवांचे हे देव करतो भक्तां ची चाकरी*

इन्द्रदेव की देनों की हमने की सच्ची स्तुति
व्यर्थ नहीं जायेगी ये सुफल लायेगी कभी (2) ॥व्यर्थ नहीं॥

गाई है महिमा गाया गुण कीर्तन (आऽऽऽ)
इसमें नहीं है अनृत
इन्द्र का होगा दर्शन दान मिलेगा उत्तम
अनुभव होगा स्वयं
होगी कल्याणकारी ये स्तुति उज्जवला
ये स्तुति उज्जवला, ये स्तुतिउज्जवला
दान भी देती ये स्तुति उत्तम
हर लेती दुःख व्याधि
इन्द्र से मिल जातीं भद्रराति बनते आत्म त्यागी
गिरें ना कदापि पायें दिनों दिन सम्मुन्नति (2) ॥व्यर्थ नहीं॥

यज्ञ ना करते जो हैं 'असुन्वत' वो विनाश को पाते। (2)
और वो सुन्वत बने याज्ञिक वो प्रकाश हैं पाते
इन्द्र के सत्य स्वभाव की उन्हें मिलती है ज्योति॥ ॥व्यर्थ नही॥

ऐ मानव! साक्षात् सत्य का कर लो तुम अवलोकन (2)
जान बूझ कर ना कर लो बन्द अपने लोचन
बोलो मिलके एक ही स्वर से भद्र है इन्द्र की राति॥ ॥व्यर्थ नहीं॥

(असुन्वत) सोमयज्ञ न करने वाला। (सुन्वत) सोमयज्ञ करने वाला। (राति) दान, कृपा।

72. महान बनो

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानः।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान्॥ *ऋ. ३.१.१६*

तर्जः *देवा हनुमन्ता आवा आवा*

आओ सुप्रणीते! आओ आओ (2)
अदेवों को नष्ट करो
आसुरी सेना भगाओ॥ ॥आओ॥

हमलावरों की है दुवृत्ति, हुए अभय, मिली तेरी शक्ति(2)
सभी आक्रमण हुए निरस्त, आई जब तेरी शक्ति दैवी
आसुरी दुर्वत्ति (2) मार के इन्हें भगाओ॥ ॥आओ॥

पुण्यमयी तेरी छाया, प्रकष्ट नीति, मामक माया (2)
तेरी शरण से हुए उपेक्षित हमें अग्निरूप तेरा भाया,
श्रेष्ठ नीतियों से अपनी, अनुकारी हमें बनाओ॥ ॥आओ॥

तेरा श्रेष्ठ प्रबल नेतृत्व, जो करे पराजित अनृत
नैतिक नियमों में ढाले अस्तेय अहिंसा और ऋत
बढ़े बुद्धि, रहे शुद्धि, अभय सत्त्व धन लाओ॥ ॥आओ॥

दैवी सम्पत्ति को अपनायें सद्‌गुण पाके धन्य हो जायें (2)
करें आत्म बलिदान को जाग्रत, सब असुरों को हरायें
देवें हवि, बनें गुणी, (2) ज्ञान से हृदय सजाओ॥ ॥आओ॥

श्रेष्ठ वीर्य को हम उपजायें, धन प्रभुत्व ऐश्वर्य बढ़ायें (2)
ये आत्मत्याग है वज्ररूप, दुरित पाप ना आड़े आयें
शरण तेरी, दया भरी, बलों से प्रबल बनाओ॥ ॥आओ॥

(वीर्य) पराक्रम, बल, तेज। (दुरित) पातक, पाप। (सुप्रणीत) श्रेष्ठ और प्रकष्ट नीति वाले। (नेतृत्व) नायकता। (अदेव) राक्षस निशाचर। (उपक्षेता) पास रहने वाला, सान्निध्य प्राप्त, शरण पाया हुआ। (आसुरी) राक्षसी। (अनुकारी) अनुसरण करने वाला। (दुर्वृत्ति) खराब प्रवृत्ति। (अनृत) असत्य।(निरस्त) जल्दी से निकाला हुआ। (नैतिक) नीति सम्बन्धित। (दैवी) देवता सम्बन्धित, देवकृत। (अस्तेय) चोरी न करना। (मामकमाया) ममता भरी प्रेरणा। (सात्विक धन) पूजित धन। (हवि) समर्पण।

73. दौड़कर भगवान को मिलाता हूँ

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्॥ *ऋ. १.३३.२*

तर्जः *देशिल कारे मझला*

कहाँ है स्वदेश अब मैंने जाना
पंखों से उड़ जा दूर ठिकाना॥

॥कहाँ॥

जग-आगम से पहले मुक्त था(2)
ब्रह्माश्रय में मगन तृप्त था
कोई सम्बन्ध प्रकृति से ना था
प्रभु शरण में, आनन्द सुहाना॥

॥कहाँ॥

मुक्ति से छूट जगत में आया(2)
फिर से मुक्ति का मन भी बनाया
पर भुक्ति में जा मन को फँसाया
चुनता रहा भोगों का दाना॥

॥कहाँ॥

भ्राँति भय रोग भोग में डूबा (2)
जीवन उलझा मार्ग न सूझा
शोक में पड़ पड़ जीवन ऊबा
आया ना मुझको जीवन निभाना॥

॥कहाँ॥

श्येन पक्षी के जैसा ठिकाना (2)
जीव को लक्ष्य अनुरूप बनाना
ईश के ध्यान चिन्तन में लगाना
भुक्ति से छूट के मुक्ति को पाना॥

॥कहाँ॥

(भुक्ति) भोग।

74. विश्व का एकमात्र राजा

म॒हाँ अ॑सि महिष॒ वृष्ण्ये॑भिर्धन॒स्पृदु॑ग्र सह॑मानो अ॒न्यान्॒।
एको॒ विश्व॑स्य भुवन॑स्य॒ राजा॒ स योधया॑ च क्षयया॑ च जना॑न्॥ *ऋ. ३.४६.२*

तर्जः *दो बोल तेरे मीठे-मीठे (कोरस गीत)*

जगति तल में भरे पड़े आऽऽऽ (कोरस)
अगणित ऐश्वर्य तुम्हारे ही हो ऽऽऽ (कोरस)
इन्हें उत्पन्न करने वाले तुम
हर समय दान हमको देते, संसार तेरे मीठे मीठे (कोरस)
संसार तेरे मीठे मीठे, संसार तेरे मीठे मीठे (कोरस)
मालिक संसार के बन बैठे (2) संसार तेरे मीठे-मीठे॥ होऽऽऽ

करते हो ऐसे चमत्कार आऽऽऽ (कोरस)
नास्तिक आस्तिक बन जाते हैं होऽऽऽ (कोरस)
जितने भी विरोधी हैं तेरे
कर न्याय उन्हें दण्ड दे देते॥ संसार तेरे मीठे मीठे (कोरस)
संसार तेरे मीठे मीठे संसार तेरे मीठे मीठे (कोरस)
मालिक संसार के बन बैठे आऽऽऽ
संसार तेरे मीठे-मीठे॥ होऽऽऽ

तुम ब्रह्मा विष्णु रुद्र वरुण आऽऽऽ
संग अग्नि वायु सूर्य के गुण होऽऽऽ
की गई वेदों में तेरी स्तुतियाँ
तेरे गुण गौरव की हैं भेंटें॥ संसार तेरे मीठे मीठे (कोरस)
संसार तेरे मीठे मीठे मालिक संसार के बन बैठे
संसार तेरे मीठे-मीठे॥ होऽऽऽ

हे इन्द्र हमें संघर्ष करा आऽऽऽ (कोरस)
जीवन के युद्ध में विजय दिला। हो ऽऽऽ (कोरस)
हे राजन् तेरी छाया में
उत्कर्ष बँट रहा, ले लेते, संसार तेरे मीठे मीठे (कोरस)
संसार तेरे मीठे मीठे, मालिक संसार के बन बैठे
संसार तेरे मीठे-मीठे॥

(उत्कर्ष) उन्नति।

75. वैश्वानर देव

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्तवान्यूतुथा वदाति।
य ई चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन्॥

ऋ. ६.९.३

तर्जः *द्वादशी यिलमणी वीतित तेनू*

मैं नहीं जानूँ जगत-वस्त्र का ताना बाना क्या है?
बुनते बुनते तन्तु टूटें, वैश्वानर-देव उन्हें जोड़ता है; हे प्रियतम!

ज्ञान का ताना! यजु का बाना, महायज्ञ के वस्त्र बुने
ताना ताने बाना भर दे, वैश्वानर वो, शनैः शनैः
ज्ञान का ताना ताने, कर्म का बाना भर दे
वस्त्र ये महायज्ञ के, जगत के सतत् वो बुने
ज्ञान तन्तु जो तोड़े, ज्ञान-वक्तव्य नया दे
सूत्र का सूत्राधार है, कहलाये वैश्वानर॥

॥मैं नहीं जानूँ॥

विश्व-शरीर की अग्नि बन, व्यष्टि समष्टि प्रतिपन्न करे
मृत्योपरान्त मोक्ष का रक्षक, वैश्वानर ही अमर करे
अपने ही समष्टि रूप से, यहाँ नीचे पृथ्वी पे
पैर बनकर के प्रसरे वहाँ, वह व्यष्टि रूप से
समस्त द्युः लोक में, नेत्र बन के सब देखे
यज्ञकर्ता है अद्भुत, वैश्वानर है सर्वग॥

॥मैं नहीं जानूं॥

(वैश्वानर) विश्वव्यापक। (वक्तव्य) कथन। (जगत वस्त्र) जगत सृजन। (सूत्रधार) सूत्र धारण करने वाला। (व्यष्टि) वैयक्तिकता। (समष्टि) समुचयात्मक व्याप्ति। (सर्वग) सर्वव्यापक।

76. अपने पुरुषार्थ से कच्चों में परिपक्वता डालें

तव॒ क्रत्वा॒ तव॒ तद्दंसनाभिरा॒मासु॑ प॒क्वं शच्या॒ नि दी॑धः।
और्णो॑र्दुर॒ उ॒स्रिया॑भ्यो॒ वि दृ॒ळहोदू॒र्वाद्गा अ॑सृजो॒ अङ्गिरस्वान्॥ *ऋ. ६.१७.६*

तर्जः द्वापर युगतिन्दी ह्रदयत्य मिल्लू

ज्ञानी होकर, हिंसा त्यागें
इन्द्र ज्योतियाँ उदित करें
सुख-लिप्सा आलस्य प्रमाद ये
बाधक विध्न से विरत रहें॥ ॥ज्ञानी होकर॥

निज कर्मों से गुरु-मति पायें]2
तब निर्णय पक जाये
कथन मात्र से शिष्य कया समझें?]2
उत्कर्ष सिद्धि काम आये
अपने कर्म, सिद्धान्त प्रबुद्ध करें (2)
कच्चों को परिपक्व बनायें
ऐसे, ऐसे (2) ऐसे ही कर्म करें॥ ॥ज्ञानी होकर॥

योग्यता सामर्थ्य करें परिक्षित]2
कच्चों को पक्का बनायें
आग अधिक हो तो जल जाये]2
कम से, कच्चा रह जाये
उतनी आँच तपायें पात्र में (2)
बाधा प्रबल, हट जायें
ऐसे ऐसे (2) ऐसे ही कार्य करें॥ ॥ज्ञानी होकर॥

बुद्धि कर्म पुरुषार्थ जगे तो]2
शिष्यों के गुरु बन जायें
प्रभावशाली हैं उपदेशक]2
ज्ञान प्रकाश जगायें
प्राणवान बन के संयम से (2)
सत्य ज्ञान को फैलायें
ऐसे ऐसे (2) ऐसे कार्य करें॥ ॥ज्ञानी होकर॥

(इन्द्र ज्योतियाँ) इन्द्रियों की ज्योति। (लिप्सा) तृष्णा। (परिपक्व) पका हुआ। (विरत) विमुख, अलग। (प्राणवान) सब प्राणों का उपयोग करने वाला।

77. मधुमती वाणी

या तें जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥

ऋ. ३/५७/५

तर्जः धरित्रीच्या कुशीमधि वियवीयाण निजली

बोल वाणी मधुमती सत्यरूप ज्ञानमयी
आनन्द मंगलकारी मृदुल प्रेम भाव भरी
॥बोल वाणी॥

आत्मिक प्रयत्नों से, सुहाये हृदय सुक्षेत्र
सद्विचार धारे मन में, वाणी हो जाये पवित्र (2)
लाये व्यवहार मधुरता, मधुर वचन हर लेवे मन
मधुर बोल, मनहर वाणी, क्लेष दुःख मिटाये कई (2)
॥बोल वाणी॥

सुप्रभात रातें मीठी, धूलि धरा की है मीठी
वायु मीठी नदियाँ औषधि, वनस्पतियाँ हैं मीठी (2)
सूर्य चन्द्र तारे मीठे, भाँति भाँति ऋतुएँ मीठी
वेदज्ञान ईश्वर का है, ईश्वर की वाणी मीठी
॥बोल वाणी॥

तू पिला प्रभु वेदामृत, होवे सबका सुख-हित
जो करे विशाल आत्मा, मन बुद्धि और चित्त (2)
सुमेधा वाणी में पायें, प्रेम बुद्धि ऋत सत्य
प्रकटे जो दिव्य भाव, समर्पित प्रभु के प्रति
॥बोल वाणी॥

(सुमेधा) परम मेधावी बुद्धि, धारणावती बुद्धि

78. ईर्ष्या-नाश

ईर्ष्याया ध्राजिं प्रथमां प्रथमस्या उतापराम्।
अग्निं हृदय्यं१ शोकं तं ते निर्वापयामसि॥

अथर्व. ६/१८/१

तर्जः *धाव पाव सावळे विठाई*

बढ़ती देखी औरों की पर अपनी जान जलाई?
ईर्ष्या-द्वेष ये बड़ी बुराई, दुःख की गहरी खाई॥
॥बढ़ती देखी॥
बड़ी विनाशक हुई प्रवृत्ति हृदय में जब जब उठी(2)
बुरी तरह सन्तप्त ये करती व्यर्थ की है तबाही॥
॥बढ़ती देखी॥
ईर्ष्या से संग्राम छिड़े कई, ज्वाला क्रोध की भड़की (2)
जाने कितनी जानें खोईं, मिटी ना लगी लगाई॥
॥बढ़ती देखी॥
किसी की धन सम्पत्ति देख के क्यों कर जलता जियरा (2)
रहो प्रसन्न, गुणी से गुण लो, यत्न से करो कमाई॥
॥बढ़ती देखी॥
जो हो सजग सुभग गुणशाली उनकी मैत्री में जुड़ जाओ।
बनो हितैषी प्रेम के बल से इसमें निहित भलाई॥
॥बढ़ती देखी॥
बनना चाहिये अभिन्नात्मा जिससे उपजे आनन्द।
पूर्णावस्था पायें मित्रता, मित्र ही प्रेम का राही॥
॥बढ़ती देखी॥
बुझे ईर्ष्या प्रेम के जल से, बुझे तो फिर ना जलाओ
ईर्ष्याग्नि हो शान्त, प्रेम के जल की भरो सुराही ॥
॥बढ़ती देख॥

(सन्तप्त) बुरी तरह तापना या जलाना। (जियरा) दिल, हृदय। (सुभग) अच्छे भाग्य वाला, सुन्दर ऐश्वर्यवाला। (हितैषी) हित चाहने वाला। (अभिन्नात्मा) साधारण लोगों से अलग दीखने वाला आत्मा। (राही) राह या पथ पर चलने वाला। (सुराही) तंग मुँह वाला मटका जिसमें पानी ठंडा रहता है। (हृदय का घट भी प्रेम जल से ठंडा रहे)

79. हे वरुण।

३१ २ २ १२३१ २ २ ३ १ २१

इमं में वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युरा चके॥

यजु. २१/१, साम. १५८५

तर्जः *धुन्ध एकात हा*

हे वरुण! आओ तुम अब मेरी पुकार पे
कब दिखाओगे दिन अपने अनुराग के ॥
॥कब दिखाओगे॥

देख व्याकुल मुझे, लोग हँसते रहे
और कहते पागल व्यंग कसते रहे
अब तो काटो बन्धन मेरे संताप के॥
॥कब दिखाओगे॥

तुमसे रक्षा मिले हैं, सतत् आस भी
प्रार्थना की, अविरत तुम रखो लाज ही
सुन अरज, हे सुखाश! पथ दिखा सुपास के॥
॥कब दिखाओगे॥

इस बँधी आस को, कर ना देना निराश
सुख प्रभु दे देना, इस हृदय को अगाध
श्रद्धा तुम पे अटल, मन है विश्वास पे॥
॥कब दिखाओगे॥

घाव भरते रहो दुःख भी हरते रहो
दुर्दिनों का, हे अनन्त! अन्त करते रहो
सब सुदिन दे दो, हमें अपने उद्भास के॥
॥कब दिखाओगे॥

(अगाध) बहुत गहरा। (सुखाश) वरुण। (सुपाश) सुख। (दुर्दिन) बुरे दिन, कुसमय। (सुदिन) अच्छे दिन। (उद्भास) चमक, शोभा

80. हम इन्द्र की डाल के पंछी हैं

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूपदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम्॥ *ऋ. १०.४३.४*

तर्जः ***धुन्ध येथमी***

इन्द्र दिव्यतम अति बलशाली भक्त जिसे हैं प्यारे,
उसकी कृपा से भक्त के पूरित कर्म भी बनते न्यारे॥ ॥इन्द्र॥

हरे भरे पत्तों का इक तरु लहलहाये पवन से
उस पर बैठे रंगबिरंगी पंछी बैठे मगन से
कुछ चहकें कुछ डाल पे फुदकें कुछ विश्राम करें
कुछ बीड़ों पे नन्हें मुन्नों पर अपनी छाया डारें ॥उसकी॥

इस तरह प्रभु भक्त सिमरते बना के तुझे आधार
प्रमुदित हो पूजा गीतों से, भक्ति के जगें उद्‌गार
बार बार वो उसे पुकारें दे श्रद्धा उपहार
इन्द्र प्रभु का आश्रय पाकर निज जीवन को सँवारें ॥उसकी॥

बल पाकर वे इन्द्र प्रभु से हो उठते विद्योतित
ऐसे अनुभव भक्त को होते जैसे हुए वो बलाधिक
रोम रोम अनुप्राणित होता और मन आत्मा पुलकित
कार्य कोई असाध्य न रहता, उठते बल-फव्वारे ॥उसकी॥

कठिन कार्य को सत्वर करते आर्य, ज्योति को पाकर
उर्ध्वारोहण और उत्कर्ष से सब विघ्नों को हटाकर
गतिशीलता देख अनवरत, शत्रु बनें निस्तेज
तेजोमय अग्नि ज्वाला ही पाप ताप निवारे ॥उसकी॥

पक्षियों जैसा बना लिया है तुम्हें आवास का वृक्ष
बलशाली हे इन्द्र बना दे हमको बली, समृद्ध
शरण दो अपनी अभयदायिनी करो आनन्द से तृप्त
बल ज्योति सम्पन्नता पायें, जीवन प्रभु तारें ॥उसकी॥

(पूरित) पूर्ण। (बीड़) घोंसला। (प्रमुदित) आनन्दित। (उद्‌गार) मन का उद्वेग। (विद्योतित) प्रभावशाली। (बलाधिक) अधिक बलवान। (अनुप्रणित) सजीव हो उठना। (पुलकित) हर्षयुक्त। (अनवरत) निरन्तर, सतत्। (असाध्य) कठिन, दुष्कर।

81. आत्मा का सिंहनाद

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्येऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः रिपाथन॥ *ऋग. १०.४८.५*

तर्जः *धुन्दी तयाना धुन्दी फुलांना*

अमर इन्द्र आत्मा विजयी होता आया
छिना ना कोई धन जीवन का कमाया॥ ॥अमर इन्द्र॥
ठनी है जगत में मेरी ये लड़ाई
वो छीने मेरा धन करे हाथापाई
मगर मैं गया ना कभी भी हराया ॥अमर इन्द्र॥
ज्यों ज्यों मैं जितना विजयी होता जाता
उतना ही ऐश्वर्य मुझमें समाता
यदि मृत्यु आई उसे भी भगाया ॥अमर इन्द्र॥
मनुष्यो! मेरे पास आकर के बैठो
प्रकृति की ना मोहनी मूर्ति को देखो
रहे गिड़गिड़ाते मगर क्या है पाया ॥अमर इन्द्र॥
ये माया ने ओढ़ी है धोखे की काया
रहा है धरा-धन, धरा का धराया
किसी ने भी मुझको न मुझसे मिलाया॥ ॥अमर इन्द्र॥
खज़ाना जो माँगो तो अन्तस का माँगो
वो आत्मा है, मैत्री सच्ची करा लो
धन्य हैं वो जिसने अन्तर सजाया ॥अमर इन्द्र॥
आओ प्यारो! मुझसे ऐश्वर्य माँगो
पूजित ये धन पाके जीवन को लाँघो
तुम्हें दूँगा वो सब जो अब तक ना पाया॥ ॥अमर इन्द्र॥
है इक शर्त मेरी जो चाहो अमर धन
करो कर्म यज्ञार्थ करो सोम का सवन
इसी में ही भक्ति व ज्ञान समाया॥ ॥अमर इन्द्र॥
बहुत हो चुका छोड़ दो जग की तृष्णा
कभी ना कभी तो इसे होगा मिटाना
चल आत्मा के संग, जो सगा बन के आया॥ ॥अमर इन्द्र॥

(यज्ञार्थ) यज्ञ के हेतु। (सवन) पान। (धरा) पृथ्वी। (धरा का धराया) साथ न ले जानेवाला।

82. मेरा नमस्कार स्वीकार करो

अया॑मि ते॒ नम॑उक्तिं जुषस्व॒ ऋता॑व॒स्तुभ्यं चेत॑ते सहस्वः।
वि॒द्वाँ आ व॑क्षि वि॒दुषो॒ नि प॑त्सि॒ मध्य॒ आ ब॒र्हिरू॒तये॑ यजत्र॥

ऋ.३.१४.२

तर्जः *धुन्दी तयाना धुन्दी फुलांना*

अग्निदेव आओ हृदय में हमारे, तेज पुञ्ज से हरो तुम घोर अंधियारे
नमस्कार मेरे क्यों ना स्वीकारे, लाज से गड़ गया हूँ प्रीतम प्यारे॥
॥अग्निदेव॥

नमन कर रहा हूँ आशीश दे दो, मेरे सर पे अपने हाथों को फेरों,
मुझे प्रेम से अपनी बाँहों में ले लो, दो शब्द चाहूँ मैं सुन लूँ तुम्हारे॥
॥अग्निदेव॥

निराकार चिरकाल का हूँ, प्रवासी, मगर तुम निराकार घट घट के वासी
मनोभाव जाने ये मन की उदासी, तो चुपचाप आ, मुझको क्यों न सम्भारे॥
॥अग्निदेव॥

निराकार हो, चाहे बोलो ना भगवन् बिना बोले कर दो प्रेरित अन्तर्मन।
मेरी टूटी भाषा का करना अदर्शन, प्रभु इतना ज्ञानी हुआ मैं कहाँ रे?
॥अग्निदेव॥

ऋतवान तुम तो हो सत्य के प्रेमी, चेतस् सहस्वान की उत्तम श्रेणी।
तुम्हारा ये आशीष है पारसमणि, छुआ तुमने लोहा तो सोना बना रे॥
॥अग्निदेव॥

पूछूँ मैं क्या? तुझको कैसे मनाऊँ, आसन जो चाहो हृदय में बिठाऊँ।
चरणों में बैठूँ तो सद्गुण ही पाऊँ तुम्हारे बिना कौन जीवन सँवारे॥
॥अग्निदेव॥

मुझे जो भी देना वो जग को भी देना, समाज में अविद्वान कोई रहे ना।
'वाज' सुख सौभाग्य कोई ना बिगड़े, चमकें धरा पे भी तेरे सितारे।
॥अग्निदेव॥

83. सरस्वती देवी

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।
यज्ञं दधे सरस्वती॥ ऋ. १.३.११

तर्जः *नंदा घरी नन्दनवन फुलले*

हे सरस्वती यज्ञ धारक देवी!
सुनुता वाणी तुझसे प्रेरित
मधुमय सत्यमयी॥

तू देवी दो कार्य कराती
वाणी सुमतियों को है जगाती
प्रेम हृदयों में उपजाती
जीवन यज्ञ अभग्न बनाती
वाणी बने स्नेही ॥यज्ञ धारक॥

यज्ञ के गहरे सूक्ष्म अंग ले
सतत् श्रेष्ठ ही ज्ञान जगाती
जीवन यज्ञ सार्थकता में
मेधा ज्योति को प्रगटाती
मंगल सुख देती ॥यज्ञ धारक॥

दुर्मति जब भी मन में उपजे
समझो माँ गई यज्ञ से उठके
फिर से हृदयासन पे बिठाओ
सुनृता वाणी पुनः जगाओ
प्रायश्चित करें ही ॥यज्ञ धारक॥

कोई कितना ही अनपढ़ हो
यदि वाचक वाणी अनवर हो
सुमती धार बहती निर्झर हो
जीवन यज्ञ चलाने उसका
करे ना माँ देरी ॥यज्ञ धारक॥

(सुनृता वाणी) सच्ची और प्यारी वाणी। (अभग्न) अटूट (अनवर) श्रेष्ठ, सभ्य। (मेधा ज्योति) प्रबुद्ध ज्योति।

84. महान धन

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः

ऋ. ९.९७.४, साम. ५३५

तर्जः *नदिये नयु नदि ये पर निन्देवेन्जू पारिवा*

गीत-रूप भाव की भाषा, भक्ति में संगति लाये
नस-नाड़ी झंकृत कर दे, भक्ति में शक्ति जगाये
स्वर लहरियों में श्रोता, मस्ती में झूम जाये
आओ मिल के गीत गायें, झूमें ज़रा
सुनिये जी सुनिये, सुनिये जी सुनिये
स्वर लहरियों में है नशा (2) आऽऽऽ

शान्त रस में ईश की भक्ति वीर रस में देश की
गायकों में उठें लहरियाँ बड़े-बड़े वेग की
सोमरस को उद्‌बुद्ध करना वीर-भुजा फड़का देना
ठंडी छातियाँ गरमायें आत्म-त्याग कर लेना
मन रे ओ मन रे, मन रे ओ मन रे उछलती लहर छलका।
मन रे ओ मन रे, मन रे ओ मन रे, पुरुषार्थ ही तू करा (2)

मातृभूमि मातृभाषा मातृसंस्कृति का
आत्म त्याग भावना से प्यार जगाता जा
सुख-समृद्धि इससे ही मानव परिवार की होगी
ईर्ष्या द्वेष द्रोह की इसमें, जगह ना कोई होगी
मन से ही मन से, मन से ही मन से, वीरों की चमकें बिजलियाँ
मन से ही मन से, मन से ही मन से, मानवों को दे दे नई दिशा (2)

परस्वत्व रक्षण और पीड़ा का हरण
भावना हृदय कलश में करती जाए गुञ्जन
चन्द्र की शीतल किरणों से वनस्पति पाती रस
वैसे पाती गिरी जातियाँ, वीरों से उत्कर्ष
मन रे ओ मन रे, मन रे ओ मन रे, दिखा क्षत्रियों सी वीरता
बन रे तू बन रे, बन रे तू बन रे, परवाना मातृभूमि का (2)

(संगति) संगम, मेल। (झंकृत) गुञ्जाना। (उद्‌बुद्ध) उठा हुआ, खिला हुआ, ज्ञान पाया हुआ। (पर स्वत्व) दूसरे का अधिकार। (उत्कर्ष) समृद्धि, श्रेष्ठता।

85. युद्ध से संसार संत्रस्त हो चुका है

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः।
अथेवं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत्॥ *ऋ. १०.२७.२२*

तर्जः नन्द नन्दन बिलमाई बदरा ने घेरी

जग में बढ़ी कठिनाई (2)
युद्धों ने मचाई, त्राहि त्राहि (2) ॥जग में॥
टैंक बन्दूकें तोपें गरजें (2)
हैं योद्धा धराशायी (2)
कितने मानव गर्द में मिल गये (2)
शान्ति कभी न पाई
युद्धों ने मचाई, त्राहि त्राहि (2) ॥जग में॥
युद्ध, संहार मचाते भयंङ्कर (2)
हमले होते हवाई (2)
शस्त्राशस्त्र बनें नरभक्षी (2)
देते शव ही दिखाई
युद्धों ने मचाई, त्राहि त्राहि (2) ॥जग में॥
विध्वंसक शक्ति इतराये (2)
अणुबम फेरें फनाई (2)
राष्ट्र बस्तियाँ बचीं अगर ना (2)
दोगे किसको दुहाई,
युद्धों ने मचाई, त्राहि त्राहि (2) ॥जग में॥
संतों-ऋषियों हमें बचाओ (2)
युद्ध बने दुःखदायी (2)
भाई भाई में प्रेम बढ़ाओ (2)
बन्द कराओ लड़ाई
युद्धों ने मचाई, त्राहि त्राहि (2) ॥जग में॥
रुक गई टैंके तोप बन्दूकें (2)
सन्तों तुम्हें बधाई (2)
सुन ली तुमने प्रयत प्रार्थना (2)
तुम ही सच्चे सहाई॥
युद्धों ने मचाई, त्राहि त्राहि (2) ॥जग में॥

(धराशायी) भूमि पर गिर जाना। (गर्द) धूल। (फनाई) नाश। (त्राहि) बचाओ। (विध्वंसक) नाशक। (प्रयत) विनम्र।

86. चमको हे उषा चमको

अ॒स्मे इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा द्युम्नं॑ य॑च्छन्तु॒ महि॒ शर्म॑ स॒प्रथः॑।
अ॒व॒घ्रं ज्योति॒रदि॑तेऋ॒तावृ॑धो॒ दे॒व॒स्य॒ श्लोके॑ सवि॒तुर्मना महे॥

ऋ. ७.८२.१०

तर्जः *नववते प्रिया मी बावरती*

सौन्दर्य भरी उषा चमको
तमरूप अमित्र को दूर करो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

अन्धकार भरी ये भूल-भूलैया, पार करा विस्तीर्ण मार्ग से (2)
रात्री काल का मन भयभीत है, जीवन यात्रा को निर्भिक करो।
॥सौन्दर्य भरी॥

भार विद्वेष का मन में रखकर, सफल हो यात्रा ये कैसे संभव?(2)
आपस की विद्वेष भावना अन्तःकरण से दूर करो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

कालिमा रहित हे उज्जवल उषे! प्रेम का सागर खूब उमड़ाओ (2)
नाश करो विद्वेष कालिमा मैत्री-धनों को खूब भरो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

शिक्षित होवे हम ज्ञान-प्रकाश से हममें हार्दिक उल्लास भर दो।(2)
सफल पगों के उन्नति-पथ को लाभान्वित भरपूर करो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

प्रकाशमय सद्गुणों से भूषित, हे उषे! नारी अति सुन्दर (2)
भाव अराति यदि हों हावी, इन्हें मार चूरा चूर करो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

हे उषे! सत्पथ की प्रेरक, द्वेष हरो ऐश्वर्य शालिनी।(2)
निर्भय कर निर्द्वेष बनाकर, प्रेमातुर नादिर नूर भरो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

हे उषे! अध्यात्मिक प्रज्ञे! जीवन में आकर तुम चमको।(2)
ऊर्ध्वयात्रा बना दो सुगम उपम, विध्नों को नेस्तानबूद करो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

सफल करो अध्यात्म साधना द्वेष ना मार्ग का बाधक होवे(2)
अंतः दिव्यवसु हों जागृत, अघ ईर्ष्या द्वेष निर्मूल करो॥ ॥सौन्दर्य भरी॥

(तम) अन्धकार। (विस्तीर्ण) फैला हुआ, विस्तृत। (विद्वेष) शत्रुता। (नूर) चमक, आभा, ज्योति। (प्रज्ञा) मेधा, समझ। (अघ) पाप। (नेस्तानबूद) नष्टभ्रष्ट। (नादिर) अनोखा,

विलक्षण। (दिव्य वसु) देवत्व की धनदौलत। (भूषित) सजाया हुआ। (उपम) सबसे ऊपर, उत्तुंग। (सुगम) सरल, सीधा।

87 आओ सोम प्रभु को भजें

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्वयाम् वाजगन्ध्यं सनेम् बाजपस्त्यम् ॥ ऋ. ९.९८.१२

तर्जः *नाटोवड़ी योरत्ते पूमर चिलै*

ध नी सा ध नी सा सा सा सा (2)
चाँद चमकीला है, सूरज में दमक
आग चमकीली देखी बिजली में है तड़क
किससे पाते हैं चमक, चमकें चाँद सूरज?
क्या कोई वस्तु देखी जिसमें ना है चमक?
कोई इनमें चमक रहा है
वो है वाजगन्ध महक रहा है
वो है ओ३म् सोम सर्व प्रेरक,
दिव्य रूप है दैवत॥...चाँद चमकीला...

आओ मित्रो! सब मिल के प्रभु को भजें
गाएँ उसके गीत उसे प्राप्त करें
बैठाएँ उसको हृद-मन्दिर में
आत्म-सिंहासन पे आसीन करें।
उसमें है वाजगन्ध
वो है आत्म सुगन्धक ब्रह्मबल
अद्भुत बल(2)
जो बना दे रंक को महाराज
जो झुका दे शत्रु-साम्राज्य
वो नास्तिक को करे आस्तिक
कैसी अद्भुत है महक? ...चाँद चमकीला...

सोम प्रभु की शरण में जाकर
ब्रह्मबल के सौरभ से होवे सुरभित

है वाजपस्तय वो सोम प्रभु
क्षात्र के बल में है उसकी ही अगन
रक्षक वर्धित
दीन रक्षक शत्रुबेधक
निर्माता, बलदानी,
आओ सोम, प्रभु को भज लें
क्षात्रबल का अनवर धन लें
आओ समाज और राष्ट्र में
फैलायें दोनों में चमक...चाँद चमकीला

(वाजगन्ध) ब्रह्मबल की सुगंध से युक्त। (आसीन) विराजमान, बैठा हुआ। (वाजपस्त्य) क्षात्रबल का सदन। (अनवर) अतिश्रेष्ठ। (अगन) अग्नि। (दैवत) देवता, देवता-समूह। (क्षात्रबल) क्षत्रिय शक्ति।

88. प्रभु का सखित्व

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः॥

ऋ. १.१०.६

तर्जः नाड़ोड़ी पुन्डिन्गळ मुडियिल चूड़ी नवरात्री

है जो ईश्वर का सच्चा प्रेमी
ईश्वर से पाता वो शक्ति दैवी
देता सबको उत्कर्ष
वास हेतु समर्थ] 2
ऐश्वर्यशाली दाता वो
करते सामर्थ्य की याचना
धन ऐश्वर्य की प्रार्थना
सुनता है सबकी वो हेरी
जीवन बनाता आरोही है जो ईश्वर...

भक्तों से भी उसको है प्यार
इसलिये वो है स्नेहागार
है वो निश्छल है वो निस्वार्थ
सबका वो करता है उद्धार
उसका हर दान है निराला
साधता है लोक परलोक
न बताता न जताता
ना ही निज पे गाने का शौक
यदि कामना है शक्ति की
तो द्वार है प्रभु का अद्‌भुत
जहाँ देह-मनो-बुद्धिबल,
मिले आत्म बल की ही युक्ति॥

सुनता है सबकी वो हेरी
जीवन बनाता आरोही॥ है जो ईश्वर...

(हेरी) पुकार। (आरोही) ऊपर चढ़ाने वाला। (उत्कर्ष) समृद्धि। (युक्ति) उपाय, चातुरी।

89. सबको बसाने वाले इन्द्र

व॒यमि॑न्द्र त्वा॒यवो ऽभि प्रणो॑नुमो वृषन्। वि॒द्धी त्व१॑स्य नो॑ वसो। *ऋ.७.३१.४*

तर्जः *नाथा नी वरुम्बोड़ियामम तराणिदमाय*

'वृषा' प्रभु हैं 'वसु'
वर्षक सुभग-दित्सु
सर्ववासक, सुखवर्षक इन्द्र!
तुम्हें प्रणाम हे अभु! वृषा...

देते सभी को सुख के साधन
जिसमें करें सब जीवन यापन] 2
प्रभु हैं तुविमन्यु
इन्द्र परम ऐश्वर्य के स्वामी
हैं संसार के पूर्ण विधानी
प्रभु हैं अवर दानु॥ वृषा...

ना केवल जग-सुख के वर्षक
परमार्थी हैं आनन्द प्रदर्शक] 2
सदा हैं दीन दयालु
पात्रानुसार ही देते विधिवत्
होते समर्पित प्रभु में साधक
भक्त हैं धीर धियायु॥ वृषा...

जग ऐश्वर्य से उपर उठकर
रहते अराधक इन्द्र से जुड़कर] 2
परम प्रीतम के पिपासु
प्यार दुलार आनन्द के प्यासे
निज अनुराग प्रभु पे लुटाते
माने उसको ही गुरु। वृषा...

भीतरी भावना प्रभु ही समझते
हृद की पुकार को ध्यान से सुनते] 2
हृदयों के हैं हृदयालु
पूर्ण पुरुष को प्रेमी पुकारें
सब कुछ अपने प्रभु पे वारें
वो ही सच्चे श्रद्धालु॥ वृषा...

(धियासु) बुद्धि पूर्वक कर्मकर्त्ता। (हृदयालु) सहृदय। (अवरदानु) श्रेष्ठदानी। (सुभग) सौभाग्य। (वृषा) सुख वर्ष के। (वसु) बसाने वाला। (अभु) सर्वव्यापक। (दित्सु) दान का दाता। (तुविमन्यु) स्थिर सिद्धान्तवाला, पक्के विचारों वाला। (दानु) दानशील।

90. मैं तेरी स्तुति करूँगा

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ *ऋ. १.४४.५*

तर्जः नानुरु सिन्द कावड़ी चिन्द राह

अमर अमृत तुम हो भगवन् मुक्त तुम्हारा स्वभाव,(2)
आत्मा भी अमर है, किन्तु उसे तो जन्म का है अपवाह(2)
॥अमर॥

भक्तों के पीयुष-तुल्य हो भगवन्]2
यज्ञिष्ठ हो यज्ञकर्मन् हो यतमन
विश्व-पालक हो और दुःख दाहक
विस्तृत यज्ञ के याज्ञिक हो, पावक
यज्ञों को रच के, पतिपन्न करते, यज्ञ-यजाक॥ ॥अमर॥

विश्व-वसु हो तुम विश्व के भोजन]2
महादुःख भी तुम उड़ाते हो तृण-सम
प्राप्तव्य तत्वों के हो हव्यवाहक
विध्न विपत्तियों के विध-वारक
करो नियोजन, भक्ति का भोजन, प्रेरक सुहाव॥ ॥अमर॥

अब तक तो मात्र तेरी स्तुति की]2
किन्तु याचना याज्ञिक नहीं की
कहते हो माँगू यदि वर मैं कोई
तो अपने ही पथ का बना दो बटोही
विश्व के पालक विध्नों के त्राता (2) हे सुखदाय! ॥अमर॥

(अपवाह) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। (पीयुष) अमृत। (यज्ञिष्ठ) सर्वाधिक यज्ञ कर्ता। (यज्ञकर्मन्) यज्ञकार्य में व्यस्त। (यतमन) मन को वश में रखने वाला। (दुःखदाहक) दुःखों को जला देने वाला। (याज्ञिक) यज्ञ करने वाला। (पावक) निर्मल स्वच्छ। (प्रतिपन्न) कार्यान्वित। (यज्ञ-याज्ञाक) यज्ञरूप दानी। (प्रभाव) कान्ति, तेज, वीर्य। (विश्ववसु) विश्व को बसाने वाला। (विश्व-योजन) जगत का पालन हारा। (तृण सम) तिनके की तरह। (हव्यवाहक) प्राप्तव्य पदार्थों का दाता। (विध-वारक) नाना प्रकार से दूर करने वाला। (नियोजक) प्रबन्ध। (बटोही) यात्री। (सुखदाय) सुखदेने वाला। (सुहाव) आकर्षक।

91. विद्या का नाश नहीं होता

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति।
देवाँश्च याभिर्यजते। ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह॥

ऋ. ६.२८.३, अथर्व. ४.२१.३

तर्जः *निज रूप दाखवावो*

जीवन का मार्ग बीहड़
रहे क्षुद्र, भ्रष्ट होकर
कितना करे निवारण
लगती है फिर भी ठोकर॥

॥जीवन का॥

कर्त्तव्य होवे सम्मुख, जग-मोह फिर भी घेरे
सही न्याय कर सके ना जब स्वार्थ मुँह को फेरे
ना त्यागना सुपथ को, कहते जो वेद वो कर॥

॥जीवन का॥

चाहे मूर्ख हो या ज्ञानी, प्रश्न आदि से खड़ा है
हैरत से लोग पूछें ये मार्ग कौन-सा है?
सही आस्था ही रखना इन वेदों के विप्रों पर॥

॥जीवन का॥

उस राह पर चलो ना जो लक्ष्य तक ना जाये
केवल बने जो भोगी पशु सम ही वो कहाये
मिला धर्म हित ये जीवन जाओ इसे न खोकर॥

॥जीवन का॥

रावण ने जब सिया को दिया लोभ, माल-धन का
ठुकरा दिया सिया ने वो विहार भोग तन का,
स्वधर्म को ना त्यागा, भोगों को मारी ठोकर,

॥जीवन का॥

जीवन के सामने जब दिखता कठिन दोराहा
तब नाच रंग भोग में जाता रहा ठगाया
संसार-लालसा का बनता रहा वो नौकर॥

॥जीवन का॥

जो मूर्ख मन्द मति है उसे प्रेय मार्ग भाये
परिपक्व है विवेकी, उसे श्रेय-पथ सुहाये
होता विवेकी को ही, सही मार्ग दृष्टिगोचर॥
॥जीवन का॥

विद्या का धन है सुदृढ़ देने से वो घटे ना
ना तो चोर और लुटेरे कभी लूट तो सकें ना
विद्या जो दे, तो रहती, विद्या उसी की होकर॥
॥जीवन की॥

विप्रों की सङ्गति से देवयज्ञ करना सीखो
वैदिक धर्म की प्रेरक, पूजो सरस्वती को
बुद्धि के खेत जोतो विद्या के बीज बोकर॥
॥जीवन की॥

विद्या की महिमा जानो खुद पढ़ लो फिर पढ़ाओ
निष्काम कर लो जीवन, तुम सबके काम आओ
दस लक्षणों में विद्या का है स्थान उत्तरोत्तर॥
॥जीवन की॥

(बीहड़) विषम, ऊँचा, नीचा। (क्षुद्र) छोटा, नीच। (भ्रष्ट) पतित, दूषित। (निवारण) हटाना, दूर करना। (आस्था) श्रद्धा। (विप्र) ब्राह्मण पुरोहित। (श्रेय मार्ग) धर्म पुण्य सदाचार मुक्ति मार्ग। (प्रेय मार्ग) वह मार्ग जो सांसारिक विषयों में लगता है। (दृष्टिगोचर) जो देख पड़ सके। (सुदृढ़) बहुत पक्का। (सङ्गति) मेलजोल। (उत्तरोत्तर) अधिक से अधिक। (मुँह को फेरना) उपेक्षित करना, ध्यान न देना।

92. वैश्वानर अग्नि का चयन मन से

वैश्वानरं मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनषत्यं स्वर्विदम्।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भीरण्वं कुशिकासो हवामहे॥

ऋ. ३/२६/१

तर्जः *निज लाडिवाळा निज वेल्हाळा*

वसुवित प्यारा पिता हमारा अग्निरूप सत्कर्म का कर्ता
कैसी प्रभुताई, माँगते आश्रय सुखदायी ॥वसुवित॥
वैश्वानर में ध्यान लगायें, ध्यान लगा उसे हृदय में पायें
श्रद्धा भक्ति की हवि चढ़ायें अग्निमय मुख माही
॥माँगते आश्रय सुखदायी(2)
सूक्ष्म है स्थूल भी पास सुदूर भी, वाणी आँख से खोज न पायें(2)
विमल बुद्धि से ज्ञान प्रकाशित हृदय गुफा माही
॥माँगते आश्रय सुखदायी(2)
ध्यानावस्थित हृदय मनन ही, आत्म-परमात्म प्रकाश जगाये(2)
मनसा कर्मणा वाचा से सत्कर्म शक्ति पाई।
॥माँगते आश्रय सुखदायी (2)
अग्निस्वरूप प्रभु आनन्ददायक, सर्वव्यापक ज्ञान प्रकाशक (2)
देव प्राप्ति का प्रेरक ईश्वर, रक्षक बलदायी
॥माँगते आश्रय सुखदायी(2)
इन्द्रियाँ सुख दुःख जग से पायें आत्मा आनन्द वैश्वानर से (2)
सारथी ईश्वर, रथि ये आत्मा, जो प्रभु पथ राही
॥माँगते आश्रय सुखदायी(2)
इक इक स्वाद चखा संसार का भूखी रह गई आत्मा फिर भी(2)
तृष्णा खेले आँख मिचौली भूख मिटे नाही॥
॥माँगते आश्रय सुखदायी(2)
भक्त की टेर सुनो रखवारे आशुतोष श्रोता प्रभु प्यारे (2)
देवत्वों के गुणों दो सारे आत्मा हो गुणग्राही॥
॥माँगते आश्रय सुखदायी(2)

(वैश्वानर) सब मनुष्यों का हितकारी। (वसुवित) बसाने वाला, ऐश्वर्य दाता (मनसा कर्मणा वाचा) मन कर्म ओर वाणी से (पवित्र) (आशुतोष) शीघ्र पिघलने वाला, रीझनेवाला।

93. प्रभु के बुद्धियोग से जीवन यज्ञ में सफलता

यस्माद्दते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति॥

ऋ. १.१८.७

तर्जः *निट्टी पूल स्वर्ण चिरगुळ्ल पक्षी*

कितना बुद्धिमान हो चाहे व्यक्ति
प्रभु संश्रय बिन क्या है युक्ति॥
॥कितना बुद्धिमान॥

अक्सर लोग बुद्धि का पग पग पर रोब जमाते
इसलिये ही पाते रहते विपत्ति॥ प्रभु संश्रय

अभिमानी की भ्रमित ही रहती सदा ही अविवेकी बुद्धि
अकल के दावेदार तो औंधे मुँह गिरते हैं खुद ही
परमेश्वर के बुद्धि योग की रहती उनमें दूषित अप्रवृत्ति॥
॥प्रभु संश्रय॥

बुद्धियोग हो प्रभु का, होवे नित आत्मसंशुद्धि
कभी ना समझो स्वयं के कारण पूर्ण हुई है इष्टि
प्रभु कृपा से, करिष्माण कृत कर्मों की कर लो तुम वृद्धि॥
॥प्रभु संश्रय॥

ईश्वर है सत्यमय, हैं वो ही हमारे दयामय
धारणावती बुद्धि में रहें हम, सदा प्रभावित हर समय
सत्य न्यायानुकूल पथिक बन पायें याज्ञिक अकत समृद्धि॥
॥प्रभु संश्रय॥

(संश्रय) सहारा। (युक्ति) उपाय। (दुराग्रह) हठ। (अप्रवृत्ति) अनुत्साह, प्रवृत्ति का अभाव। (आत्म संशुद्धि) आत्मा की पूर्ण शुद्धता। (इष्टि) इच्छा कामना। (करिष्माण) किये जाने वाले। (कृत कर्म) संकल्पित कर्म (धरणावती) सदा परमेश्वर से जुड़ी बुद्धि। (अकत) पूर्ण।

94. सदा प्रसन्न रहें

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु मूयमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः॥

ऋ. ६.५२.५

तर्जः *नित्य तुझा पूजा साठी गजानन*

क्या है लोगों की इच्छाएँ
क्या क्या कामनाएँ
हम तो केवल ईश्वर तुझसे
आनन्द चाहें

॥हम तो॥

सुमना रहें निरन्तर प्रसन्न रहें नर नारी।
रहें दूर अज्ञानों से बनें सदा परोपकारी।]2
नव प्रकाश पाते रहें, चुने सत्य-राहें॥

॥हम तो॥

उत्तरोत्तर सूर्य समचर ज्ञान उदय होवे
सानन्द हृदय हमारा हृदयहारी होवे]2
इससे अधिक धन ऐश्वर्य और क्या चाहें॥

॥हम तो॥

देवाधिपति सुदेव सर्वगुण दायक (2)
दिव्य गुण प्राप्त कराओ हे परम सहायक (2)
हर समय प्रसन्नमना हम बनें और बनायें॥

॥हम तो॥

(सुमना) अच्छे मन वाला। (सानन्द) आनन्द सहित, आनन्द पूरित। (हृदयहारी) हृदय जीतने वाला। (समचर) समान आचरण वाला।

95. पवित्र यज्ञ

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।

ऋ. १.८९.८, यजु. २५.२१, साम. १८७४

तर्जः *निन्ने निडलाय तारातुमोडम*

मन वाणी और इन्द्रिय देवों!
दृढ़ बनो बलवान बनो
प्रभु ने भेजा तुमको जगत में
भद्र बनों कल्याण करो
प्रभु ने दी जीने की आयु
शतवर्षों की
श्रवण दर्शन करो यजनीय
ऐसे कल्याणकारी तुम बनते ही जाओ

॥मन वाणी॥

तुम्हारे अंशों से ही देवो!
इक इक इन्द्रिय हुई उत्पन्न
उसके हर अङ्ग द्वारा करना
भद्र सोम का ही सेवन
है हर देव का यही यजन
शुद्ध स्वभाव गुण करम॥

॥मन वाणी॥

आऽऽऽ करेंगे जो देवों से ग्रहण
वही है सच्चा प्रभु का ही धन
इक इक स्वस्थ्य अङ्ग बनेंगे यज्ञिय
और हर यज्ञ में प्रभु स्मरण
पर कल्याण तो प्रभु का ही यजन
भद्रता हो शतवर्ष-पूरण॥

॥मन वाणी॥

96. तीन देवियाँ

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः॥ *ऋ. १.१३.९*

तर्जः ***निन्नोड़ी निक्युल्ल प्रणयम चुल्लुवाय न्यान***

इड़ा सरस्वती और मही की महिमा गाई है वेदों ने हरदम (2)
तीनों ही देवियाँ यज्ञांग बनके करें चहुर्मुखी विकसित जीवन॥(2)॥

हे दिव्य! प्यारी देवियों! आओ राष्ट्रयज्ञ में होवो आसीन
राष्ट्रोन्नति की चरम सीमायें जिसमें प्राप्त होंवे अनगिन
त्रिगुणाप्त देवियाँ आत्मसात कर लो, राष्ट्र के सारे भण्डार भर दो
राष्ट्र के यज्ञों में और जीवन यज्ञों में, अक्षीण बन करो आगमन
दो विद्या संस्कृति अन्न धन॥ इळा...

इडा है सम्पदायें, सरस्वती विद्यायें और है मही, संस्कृति,
भूमि अन्न और गौएँ इड़ा रूप हैं, हरे भरे राष्ट्रों की सम्पत्ति,
जागृत सुमतियों की मधुर ज्ञान धारा, कहलाती है देवी सरस्वती।
पूजित या सम्मानित, राष्ट्रों की परिस्थिति, उस राष्ट्र की है मही,
इनसे ही राष्ट्र रहे सम्पन्न॥ इडा...

हे देवियों! तुम हो पूर्ण प्रकाशमयी और तुम हो प्रकाश दात्री,
हो अखिल दिव्य गुणों से सुशोभित, तुम ही हो मनोरम गायत्री
राष्ट्रयज्ञ में आओ तुम बर्हि बनकर बन जाओ तुम हृदयवासिनी।
हे अस्त्रिध और मयोभुवः राष्ट्रों की सुखदायिनी देवी करते तुम्हारा
हम पूजन॥ इडा...

वैखरी मध्यमा पश्यन्ती वाणी रूप हैं देवियाँ अनुग्रही
इडा हमारी है स्थूल वाणी होती उच्चारित वाणी वैखरी
सरस्वती मन वासिनी वाणी है माध्यमा है ये विचारात्मक वाणी
परा पश्यन्ती दो रूपों में रहती आत्म वसित है प्रतिष्ठित मही
करती अध्यात्म विकासन॥

(इडा) सम्पत्ति की प्रतीक देवी। (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान धारावाली। (अस्त्रिध) न क्षीण होने वाली, अमिट। (मही) संस्कृति की प्रतीक देवी। (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करने वाली। (आसीन) विराजमान। (अक्षीण) अविनाशी। (अखिल) संपूर्ण, अखण्ड। (अनुग्रही) कृपा करने वाली। (बर्हि) यज्ञ, अनेक प्रकार के कुशा का आसन। (चार वाणियाँ) वैखरी मध्यमा पश्यन्ति, परा।

97. सब काव्य वचन उसी के लिए

अस्मा॒ इत्काव्यं॑ वच॑ उ॒क्थमिन्द्रा॑य शंस्य॑म।
तस्मा॑ उ॒ ब्रह्मवाहसे॒ गिरो॑ वर्धन्त्यत्र॑यो॒ गिरः॑ शुम्भ॒न्त्यत्र॑यः।

ऋ. ५.३९.५

तर्जः *निम्ब लोल उसरु कशी*

बुद्धिमान कवि प्रभु ने, वेदों को रचाया।
एक वेद वचनात्मक, दूजा जगत-माया।
॥बुद्धिमान॥

जीव को है दोनों काव्य, पढ़ना और पढ़ाना
वचन आत्मसात करके, जीवन है बनाना।
सर्व वाणियों का मूल वेद जगमगाया॥
॥बुद्धिमान॥

ज्ञानरूप वाणी फैली, वेद ही के द्वारा
वेद ने ही वाणी-मूल पर प्रभुत्व धारा
वेद ही तो स्तुति समूह, वहन कर पाया॥
॥बुद्धिमान॥

ब्रह्मधारक ब्रह्मनिष्ठ वेद के अनुयायी
जो त्रिदोष रहित वाणीयों के हैं प्रवाही
आदि सृष्टि से ही ऋषियों ने वेद पाया॥
॥बुद्धिमान॥

आस्तिकों की वाणीयों में सम्भवित हैं पाप-दोष,
किन्तु ब्रह्मनिष्ठ वाणीयों में सत्य वचनों के हैं कोष,
ब्रह्मनिष्ठ वेदज्ञों ने ब्रह्मधन कमाया॥
॥बुद्धिमान॥

ज्ञान पाके हे मनुष्य! धन व यश कमाना
और आसक्तियों से अपनी आत्मा को बचाना
लोक धन से श्रेष्ठ प्रभु ने ब्रह्म धन बनाया॥
॥बुद्धिमान॥

(आत्मसात) सब प्रकार से अपने अधीन। (वहन) उठाना। (प्रवाही) बहने या बहाने वाला। (कोष) ढेर। (वेदज्ञ) वेदों के जानकार। (लोकधन) सांसारिक धन। (ब्रह्मधन) ईश्वरीय धन।

98. मैं भगवान से कीर्ति माँगता हूँ

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मनूहा।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे। वरुणस्य भूरेः॥

ऋ. २.२८.१

तर्जः *निला मलरे निला मलरे प्रभा किरणम् वराराई*

यजन करके तुझे ध्याऊँ
यजथ बन महिमा नित गाऊँ
ये जग साम्राज्य तेरा
तो फिर मैं भी हूँ तेरा
करूँ तेरी भक्ति मैं,
शक्ति दे,
हे स्वामी!

॥यजन करके॥

हे क्रान्तदर्शी कवि! आऽऽऽ
महिमा सर्वोपरि
ज्ञान तेरा गहन
विश्व तेरा यजन
सूर्य किया उत्पन्न
शीत शशि-किरण
जड़ और चेतन
वस्तुएँ तेरे अर्पण
तेरी शक्ति अति(2)

॥यजन करके॥

जो होते दिव्यगुणी आऽऽऽ
यजन के प्रति करते
करते विप्रों का संग
होता देव पूजन
संग-संगतिकरण
पाते वो, वसुधन

लेते दान का प्रण
देखते प्रभु को मन्द्र
बनते याज्ञिक सुधी (2)

॥यजन करके॥

होते ना प्रभु खण्डित आऽऽऽ
दूर उनसे अनृत
भक्तों के प्रति नम्र
बन जाते हैं वो मन्द्र
फलते हैं शुभ करम
पाते भक्त आनन्द
मिलता है सुतरण
मोक्ष का वरण
होता है आत्म-क्षालन
मिलते यश-कीर्ति (2)

॥यजन करके॥

(क्रांतदर्शी) सब पदार्थों का संपूर्ण गहरा ज्ञान। (वसुधन) दैविक धन। (सुधी) बुद्धिमान, मेधावी। (मन्द्र) हर्ष देने वाला। (क्षालन) निर्मलता, शुद्धता। (संगतिकरण) विद्वानों के संग से अच्छे गुणों को सीखना। (देवपूजा) दिव्यगुणशाली विद्वान और अग्नि आदि देवताओं की पूजा करना। (यजन) यज्ञ करना। (यजथ) लोकोपकार में संलग्न।

99. सत्य को समझें

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्त मुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते

ऋ. ७.१०४.१३, अथर्वः ८.४.१३

तर्जः *निलाविन्दे नील भस्म कुईयनिन्नवड़े*

सदा मन में सत्य को ही धारण करें,
सत्य की ही सोमधारा में ही नित्य बहें,
जो असत् पर असत् रचता दुहरी बात कहे
सोम से वञ्चित रहे वो पाप कर्म करे॥
॥सदा मन में॥

जो मनुष्य अपने में रचना असत् की करे
सोम के जीवनदायी रस से विच्छिन्न रहे
बन्धनागार में पड़ के जन्म व्यर्थ खोये
ईश के रक्षित गुणों से खुद को दूर करे
ईश्वर के रक्षित गुण
लाते हैं पुन ही पुन
पुण्य के बीज ही बो
प्रभु का रक्ष वृजिन, हमारी क्यों न रक्षा करे॥
॥सदा मन में॥

पाप के कारण यदि पापी धन जो बढ़े
क्षुद्र बुद्धि वाले उसे प्रभु की कृपा न कहें
सत्य को जो समझें मान वो क्यों पाप कमाये
काँपता उसका कलेजा पाप से घबराये
पाप का लौटे फल
पापी होता विकल
कहता बचाओ प्रभो!
कष्ट दुःख से ऊबता मन, करता कर्म खरे॥
॥सदा मन में

(रक्षः वृजिन) वर्जनीय पाप से रक्षा। (क्षुद्र) तुच्छ, अल्प, दरिद्र। (विकल) व्याकुल, बेचैन, असमर्थ। (रक्षः) पाप, राक्षस।

100. कब दर्शन करेंगे?

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्॥

ऋ. १.२५.५

तर्जः *निलाविन्दे नील भस्म कुईय निन्नवड़े*

महादर्शन शक्तिवाले अपना दर्शन दे
कब मिलोगे हमको भगवन् हम तो तरस रहे
'उरुचक्षस' गुण है आपका इसी कारण से
आपके दर्शन-पिपासु हम सदा ही रहे॥

॥महादर्शन॥

आपके महाज्ञान की सीमा तो कोई नहीं
इसी ज्ञान समुद्र में, गोते की आस रही
आवरण अज्ञान के, करते हो नष्ट तुम्हीं
आप बल के आश्रय हो, और बढ़ाते श्री
आपकी देख रेख
दे देवे कान्ति तेज
हे बल के वायु वेग
हो जायें हम निहाल तेरे दर्शन से॥

॥महादर्शन॥

आपकी संगति हमारे देगी खोल नयन
जो हमें कर्तव्याकर्तव्य का देंगे सुमन
नेता हो तुम हमको सत्पथ ले चलो भगवन्
प्राप्त हो सुख जिससे कट जाएँ दुःख बन्धन
दुःख के काटो फन्द
सदा ही रहो संग
किरणें दो निज चन्द
दर्श मिले तेरा, आत्म समर्पण से

॥महादर्शन॥

(उरुचक्षस्) महान दर्शन शक्ति वाले। (सुमन) अच्छे मन वाला।

101. हमारे विविध पाप

अर्यम्यं॑ वरुण मित्र्यं॑ वा॒ सखा॑यं वा॒ सद॒मिद् भ्रात॑रं वा।
वे॒शं वा॒ नित्यं॑ वरु॒णार॑णं वा॒ यत्सी॒मागं॑श्चकृ॒मा शि॒श्रथ॒स्तत्॥

ऋ. ५.८५.७

तर्जः *निलावे निलावे नीमयन नल्ली*

जगा दे बना दे शुद्ध चित्तवृत्ति
मिले शुद्ध बुद्धि हो प्रभु से प्रीति
बनूँ मैं पात्र तेरा, पवि जीवन हो मेरा
और पाऊँ मैं प्रणति॥ ॥जगा दे॥

तेरे शुद्ध स्वरूप की ही ओर ताकता
तब तो पापों से ही होती जाएगी घृणा
निष्कलंकित होगा जीवन, दूर होगी व्यथा
इसलिए तुझे बार-बार पुकारूँ मैं दाता
दूर पापों को करो, चित्त मन शुद्ध करो
प्यारे भगवन् करता याचन
सुनो मेरी विनती॥ ॥जगा दे॥

अर्यमा के विरूद्ध जो करते हैं पाप, है अर्यम्य
सत्य नियम जो भंङ्ग करते होते ना वो क्षम्य
अपने स्वार्थ का ध्यान रख के करते हैं जो पाप
नियम भङ्गी पापी को करना नहीं क्षमा आप
ऐसे पापों से बचूँ नियम ना मैं भङ्ग करूँ
हे अर्यमा! करो रक्षा
करो पूर्ण संशुद्धि॥ ॥जगा दे॥

स्नेह करने वाले स्नेही, हैं हमारे मित्र
उनके प्रति जो करते हैं छल, पाप है वो मित्र्य
मित्र रखता स्नेह यदि वो करता है विश्वास
बदले में विश्वास घात मिले तो वो है पाप
मित्र्य पाप से दूर हों, मित्र भाव से पूर हों
बनें मित्र, सखा और अपने सखा से
करें सच्ची प्रीति॥ ॥जगा दे॥

जो न भाई-बहन न मात पिता न मित्र सखा
रहते जो हमसे परे उन अरणों को देते सता
चोरी करते लूट लेते और कतरते जेब
ऐसे पापी पाप की पाते हैं दुःख सज़ा
दिवस हो या रात्री हो, ऐसे पाप तो ना करो
मिल ना सकता सुख का रास्ता
रखो न दुर्मति॥ ॥जगा दे॥

पापों से परिपूर्ण है यदि ये अमोल जीवन
पा नहीं सकता कभी भी पामर सुख की किरण
पाना है यदि ऋत-प्रकाश तो प्रार्थी प्रभु का बन
दूर होगा पापों से यदि लेगा प्रभु की शरण
पापों से तू युद्ध कर और विजय को कर प्राप्त
प्रभु से शक्ति ले ले प्रार्थी
बन जा पुरुषार्थी। ॥जगा दे॥

(पवि) शुद्ध, निर्मल। (प्रणति) विनम्रता। (अर्यमा) जो हमें नियमों पर चलाते हैं। (अर्यम्य) जो चीज हमें अर्यमा से संबंध रखती है। (संशुद्धि) पूर्ण विशुद्ध। (मित्र्य) मित्र से सम्बन्धित। (सखा) जिनकी शिक्षा दीक्षा स्वभाव बोलचाल एकसम हों। जो आपस में कुछ नहीं छिपाते उस मित्र को सखा कहते हैं। (अरण) अन्जाना, अपरिचित। (पामर) पापी। (प्रार्थी) प्रार्थना करने वाला।

102. अपांक्तेय

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥

ऋ. १.४०.३, साम. ५६

तर्जः नी इनकन्चिल मळयिल वरमो

सकल ब्रह्माण्ड के रक्षक स्वामी, ज्ञानरूप तेजस्वी तुम हो
ज्ञानज्ञेय ज्ञाता का परिचय, सबको कराने वाले भी तुम हो॥
॥सकल॥

साऽ सानीसा सानीसा सानीसा सानी गरे सारेगप गरे सानीसारे(३)
इस ब्रह्माण्ड में जो भी ज्ञेय है सब कृति-ज्ञान तुम्हारा (2)
इधर ज्ञान के तुम आधार हो, उधर आधार ब्रह्माण्ड में सारा
हर समबन्ध में तुम हो॥ ॥सकल॥

तक धिन तक झुम तक धिन तक झुम तक धिन तक झुम
दी तरकिट धाम दी तरकिट धाम दी तरकिट धाम दी तरकिट धाम
दिग दनी तिर फिट धाम (3)
सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं (2)
उन सबके हे अग्निदेव! तुम ही तो आदि मूल हो
आदिमूल हे अग्ने! तुम हो॥ ॥सकल॥

ज्ञान स्वरूप प्रभु हम सबको, शुद्ध ज्ञान की दे दो प्रज्ञा (2)
वेद ब्राह्मण और अपने आप में, होवें आपके हम सब दृष्टा
तीनों के रक्षक तुम हो॥ ॥सकल॥

प्राप्त करें शुद्ध ज्ञान को तुमसे, जग में उसका प्रवचन करें(2)
ज्ञान, मधुर वाणी बन जाए जिससे शुद्ध व्यवहार करें।
शुद्ध ज्ञान के दाता तुम हो॥ ॥सकल॥

सूनृता देवी के दर्शन होवें दिव्य रूप मधुमय वाणी में (2)
तेज वीर्य बल मन्यु होवे, प्रेम रहे अगवानी में,
मधुर वाणी में भी तुम हो॥ ॥सकल॥

अग्निदेव वाह! दर्शन तेरे, एक साथ कई देवों के दर्शन (2)
सत्य-सहन, मधु, प्रीत का द्योतन, हैं सब याज्ञिक धृत्वन
इन सब यज्ञ में तुम हो॥ ॥सकल॥

ऋत परिधि में धर्म मर्यादायें यज्ञकुण्ड मेंखलाएँ हैं (2)
अग्निदेव सब यज्ञ सफल करो पास देव तेरे हम आये हैं (2)
ऋत रक्षण में तुम हो॥ ॥सकल॥

ब्राह्म की परिधि में, ब्राह्मण के ब्रह्म से वेद की रक्षा होवे (2)
इस परिधि में हे ब्रह्मणसपते! तव ब्राह्माण्ड भी रक्षित होवें
विश्व-अध्वर में तुम हो॥ ॥सकल॥

(ज्ञेय) जानने योग्य। (ज्ञाता) जानने वाला। (ग्राम) समूह (प्रज्ञा) उत्तम बुद्धि। (सुनृता) रसीली सत्यरूप (धृतवन्) ग्रहण करने वाला। (द्योतन) प्रकाशन। (दृष्टा) देखने वाला (अगवानी) आगे ले जाना।

103. हमें निन्दा और पाप से बचाओ

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः। सखा सुशेव एधि नः।

ऋ. १.९१.१५

तर्जः नी इन्दे दल्ले इन्द स्वन्द मलै

हे मेरे सोम! अहंस् से बचा दे (2)
सब कर्त्तव्य पालन व्रत जगा दे (2)
अपनी निन्दा से बच पायें
सब हृदयों में, हम बस जायें
सुखदायक दिव्यानन्द तुझे चाहें हे मेरे...

दुष्कर्म से निन्दा होती है तब, जब स्वार्थ पूर्ति होती न सफल
दुष्कर्म हमसे चाहे कोई करे, या हम भी पीयें दुष्कर्मी गरल
दोनों ओर से बनते निन्दा के भाजन
असत्कर्म होते सदा निन्दा के कारण
इसलिये निष्कलङ्क हमें बना दे॥ हे मेरे...

जो पूर्ण रूप से हैं सत्पुरुष, वो तो परार्थ में जीते हैं नित
निज स्वार्थ को करते हैं जो तिरोहित,
दूर ना जाता उनसे परहित
कुछ परहित में रखते हैं स्वार्थ अपना
कुछ स्वार्थियों को लगे परहित सपना
ऐसे लोगों की सद्बुद्धि देदे॥ हे मेरे...

राक्षस प्रवृत्ति है धरती पे बोझ
त्याज्य हैं ऐसे असत्कर्मी लोग
कई निष्प्रयोजन ही देते हैं शोक
ऐ प्यारे मित्रो बनो उच्च लोग
हे सोम! निर्दोष कीर्तिमान राजन्
बन जाओ हमारे 'सुशेव'
दिव्य आनन्द और सुख सदा दे

(सुशेव) अत्यन्त सुखकर। (तिरोहित) अदृष्ट करना। (अंहस) ऐसे पाप जो खुद को और दूसरों को हानि पहुँचाते हैं।

104. रात्री देवी का स्वागत

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्रि। *साम. ६०८*

तर्जः *नी कंगरे नी नाद रे रंगात दोरो*

चिर युवती आई हैं किरणें सूर्य ज्ञान अपना सब समेट के
देखते ही देखते सब प्राणी सोये
ममतामयी अपनी मात-गोद में
ईर्ष्या द्वेष राग कोलाहल, झक झगड़े द्रोह हिंसा हठ हटे
दुःख दुख ये सब भुलाकर मिला चैन मातृ स्नेह से
॥चिर युवति...॥

मञ्जुल सुखद सुषुप्ति को छोड़ जब जागते हैं हम प्रभात में
तब चित्त में असीम प्रफुल्लता शान्ति संजीवन संजात करें
रात्री-उषा दो बहनें गगन-प्रांगण में दोनों परस्पर क्रीड़ा करें
इस मानव को मृदुल आँचल छाया देती हेत से॥
॥चिर युवति...॥

एक और दिव्य योग-निद्रा है ये तो है दिव्य राखी की प्रहर
बाह्य जगत् से इन्द्रिय होते निवृत्त निर्विषय होवे चित्त का पटल।
जहाँ ब्रह्म-ज्योति दृष्ट होती है, समाधि-अवस्था की अमिय रात्री है
बाह्य सारे ज्ञान-प्रज्ञान हटते हैं अंतस्-सुमेध से॥
॥चिर युवति...॥

विश्रामदायिनी दिव्यानन्द जननी योगियों की माता है दिव्य रात्री
जराजीर्ण वृद्धा माँ, ये नहीं है, चिर युवति माता है अदिति,
योगी शिशुओं को अङ्क में बिठा के जग बन्धन से करती है मुक्त
हो के सजग अमर अजय पाते मोक्ष अमरेश से॥
॥चिर युवति...॥

(मञ्जुल) मनोहर, सुन्दर। (संजात) भली भाँति उत्पन्न। (सुमेघ) अच्छी बुद्धि , समझ। (अमिय) अमृत। (अमरेश) अमर परमात्मा। (अङ्क) गोद।

105. हमें पापेच्छुकों और दुश्चिन्तकों से बचाओ

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्यै मर्ताय॥

ऋ. ८.७१.७

तर्जः *नीकै नैनुम नाके नोकुम कुन्टे चाल कराल*

पुण्य की राह पे हमें चला प्रभु पापों से बचा
दुश्चिन्तक से दूर करा के चिन्तन में लगा॥
चिन्तन का करें मनन
सद्वृत्ति में लगा दे मन॥

पुण्य की...

पापी तो हैं पाप में फँसे स्वयं
चाहते हैं उनके जैसे बनें पापी हम
कभी मदिरा, कभी तस्कर कभी लूट, जुआ कभी
दुश्चिंतक तो चाहें कोई राह ना चले सही
प्रभु-भक्ति में न उनका मन तो कभी लगा
और भक्तों को दी गाली बुरा भला कहा॥

पुण्य की...

तुम तो हो सर्वान्तर्यामी प्यारे भगवन्
जानते सब धर्मात्मा पापियों के मन
भरो हममें बल सुरति कुप्रभावों के हों ना हमले
परामर्श ना उनका कभी ले ले के हम बदलें
अपने सद्वाणी से हम उनको लेवें बचा।
ऐसा करने से ही तो देश समाज जगा॥

पुण्य की...

(सुरति) सुध (परामर्श) युक्ति, मंत्रणा (तस्कर) चोर

106. तू अकेला ही

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्व वित्।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद्दयावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः॥ *ऋ. १०.९१.३*

तर्जः नीजवा ने पांदळे ओढ्या माधव तमे

तेरे गुण कीर्ति का कितना परिभाण है
शक्ति कहाँ है इसे जोडूँ?
तेरे गुणकर्म की सूची महान है
वर्णन क्या कर सकूँ? क्या बोलूँ? ॥तेरी गुण कीर्ति॥

फिर भी कुछ तेरी विशेषताओं का गान करके धन्य करूँ आत्मा।
परम पिता परमेश्वर तुम तो सुदक्ष हो महाबली सर्वबलदाता
आत्मबल चातुर्य दक्षता निपुणता का बाट कहाँ जिससे मैं तोलूँ?
॥तेरी गुण कीर्ति॥

शुभ हैं तुम्हारे बल सदा उपकारक, करते ना भक्त को उद्वेजित
क्रतु से महान हो तुम परम सुक्रतु हो, करते क्रतुओं को आह्लादित
ज्ञान मेधा कर्म प्रज्ञा संङ्कल्पों के धनी ध्यान क्यों न तेरी ओर मोडूँ॥
॥तेरी गुण कीर्ति॥

हे जगदीश्वर तुम अपने काव्य के अनन्त काल के हो महाकवि
काव्य ऐसा तन मन झूमें वो है वेद-काव्य रस अमि
एक एक मन्त्र और पद वेद काव्यमय तेरा जान के आत्मा में धरुँ॥
॥तेरी गुण कीर्ति॥

हे सकल जगत स्रष्टा तुम विश्वविद हो तुमसे ना बात छिपी मन की
घटित घटना होने वाली चाहे किसी कोने में घटनायें जानें प्रतिक्षण की।
भौतिक आध्यात्मिक जग के नियन्ता नियम तेरा कोई भी ना तोडूँ॥
॥तेरी गुण कीर्ति॥

द्युः पृथिवी अन्तरिक्ष में 'वसु' विद्यमान है उसके निवासक तुम्हीं हो
स्वर्ण रजत रत्न कारक उपकारक रत्नेन्द्र राजाधिराज धनी हो,
सकल जग का सर्जन पालन करते नियम चलाते सुचारु॥
॥तेरी गुण कीर्ति॥

(परिमाण) माप। (सुदक्ष) बड़ा निपुण। (दक्षता) योग्यता। (उद्वेलित) व्यग्र घबराया हुआ। (आह्लादित) आनन्दित। (मेधा) बुद्धि। (प्रज्ञा) समझ। (अमी) अमृत। (विश्वविद) महापण्डित। (वसु) बसाने वाला। (निवासक) आश्रयदाता। (सुचारु) सुन्दर मनोहर। (रत्नेन्द्र) श्रेष्ठ रत्न। (घटित) घटी हुई, निर्मित, रचित।

107. अमोघ शक्ति युक्त सत्यधारी महात्मा

अहभेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्र ये वज्रं युधयेऽकृण्वत।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळहा वदन्नमस्युर्नमस्विनः॥ *ऋ. १०.४८.६*

तर्जः नी बन्धना जनम जनम दा अनुबन्धना

ऐ आत्मा! अपरिमित बलशाली रक्षकर्ता
अनचाहा जग द्वन्द्व आ आकर के जूझता ॥ऐ आत्मा॥

द्वन्द्व प्रतिद्वन्द्व दीखा करते शक्तिशाली इस जग में
भूख प्यास सर्दी गर्मी शुभाशुभ इनके वश में
सुख दुःख के चक्कर, राग-द्वेष इनके वश में
खल-खई की खड़-खड़, लघु-बहु की बड़बड़
फँसता द्वन्द्व में कभी और कभी छूटता॥ ॥ऐ आत्मा॥

ये ललकार, दृढ़ आत्मा के आगे आकर फीकी पड़े
क्योंकि ये द्वन्द्व परिणामी अनित्य अनमिल प्रकृति के.
अवनत हो जाना, अवमत हो जाना,
द्वन्द्वों का आना, रुकना फिर जाना
आत्मशक्ति के हल आत्मा ढूँढता॥ ॥ऐ आत्मा॥

मैं नित्य हूँ अनवर अविकल अविचर अनत अतूथ हूँ।
आत्मबल, दृढ़ सङ्कल्प है तेज है फिर मैं क्यों कर दबूँ
क्या हर्ष क्या शोक क्या लाभ क्या हानि
क्या शीत क्या उष्ण सब हैं परिणामी
मैं गुणी आत्मा आत्म बल से बढ़ा॥ ॥ऐ आत्मा॥

मान अपमान सुख दुःख व्याधि कष्टों में मैं समचित्त रहूँ।
सिद्ध असिद्ध दोनों स्थितियों में मैं सुहृद सरिस रहूँ
है वाक् व्रज संकल्प वज्र
इनसे मैं जीतूं जग के ये द्वन्द्व
समरजीत आत्मा पा रहा दिव्यता॥ ॥ऐ आत्मा॥

(द्वन्द्व) युद्ध लड़ाई। (खल खई) दुष्ट लड़ाई। (अनमिल) ककर्श, बेमेल। (अवनत) खिन्न, गिरता हुआ। (अवमत) कुत्सित, घृणित (अनत) अडिग। (अनवर) श्रेष्ठ, उत्तम। (अविकल) अक्षत, नियमित। (अविचर) स्थिर, अटल। (अतूथ) असाधारण, विलक्षण। (समचित्त) प्रशान्तचित्त, समनस्क। (समरजीत) संग्राम की जीत। (सरिस) समगुण।

108. रुद्र की छाया में

उन्मा॑ ममन्द वृष॒भो म॒रुत्वा॒न् त्वक्षी॑यसा॒ वयसा॒ नाधमानम्।
घृणी॑व च्छा॒यामरु॒पा अ॑शी॒याऽऽविवा॑सेयं रु॒द्रस्य॑ सु॒म्नम्॥

ऋ. २.३३.६

तर्जः *नीर पडन्नू मिरि चिन्ने मळतूर्म नेड मिल मेदी*

अधिकरण मिले तेरा, हे रुद्र आ शरण दे दे
निस्तेज हो रहा जीवन, मुझे तेजोमय जीवन दे
कह रहा हूँ, मृदुमन से, मैं रहूँगा मुग्ध प्रभु तुम पर
लिये सुख को निधि बना के पूजा करुँगा तेरी अनवर
प्रभु मैं तेरी छाया बिन क्या रहूँगा चैन या सुख से?
तपित हुआ कष्ट से अनगिन, दूभर हुआ जीवन दुःख से
अधिकरण...

मरुतवान् परमेश्वर प्रशस्त देते हो प्राण
हे वृषभ हृदय की, है तुम से ये द्रवित माँग।
प्रार्थना सुन मेरी दे दिया तेजोमय जीवन
ना मृततुल्य हुआ मैं हुआ जाग्रत मेरा चित्त-मन
स्वयं होने लगा कर्मण्य, होने लगा मैं संतृप्त
फिर अब होने लगा है अनुभव, प्रभु प्रेम करे मुझे सिक्त॥
अधिकरण...

जैसे सूर्य-ताप में मिलती छाया वृक्ष से
वैसे रुद्र प्रभु की छाया, दूर करें कष्टों से
व्याकुलता विक्षोभ दुःख ग्लानि उद्वेग मनस्ताप
परिणत होकर शान्ति में बनता सुख का प्रसाद
मैं इस सुख को मानूँगा धन्य, जो पूँजी है अनमोल
संजोये था चिरकाल से मन निज, द्वार देंगे प्रभु खोल।

(अधिकरण) सहारा, आधार। (अनवर) श्रेष्ठ, उत्तम। (मरुतवान्) प्राण वाले ने। (वृषभ) वरदानों की वर्षा करने वाले। (परिणत) बदला हुआ रूप।

109. तेरे प्रति प्रणत

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः *ऋ. ७.३२.२२*

तर्जः *नी रान्जन नीदनी दयुम केदु विशाल समृति*

लगते हो तुम प्रभु अपने अपने
करते हैं याचना चरणों में झुक के,(2)
तुम ही हमारे हो राजा,
और हम हैं तुम्हारी प्रजा
करते हो तुम ही कृपा
और पाते हैं तेरी दया(2)
तेरे दर्शन को लालायित
हो रहे हैं हम कितने
देखे मिलन के सपने (2) ॥लगते हो॥

निनादिनी ये सरितायें, सूर्य तारे उपग्रह चन्दा
प्राणियों की देह रचना, हृदय चक्षु या कर्ण त्वचा रसना
हिमाच्छादित गगन चुम्बी पर्वत की उच्च चोटियाँ
महिमा तेरी महान देखें नित नैना कब से। (2)
जड़ चेतन पे राज तुम्हारा, फिर भी मनुष्य पाते हैं मुक्ति सुख
दर्शन देते हो नाथ, मानवों को योनियाँ भी देते हो शुभ
जब जब गायों के उधस हैं उनके, श्रद्धावान वैसे झुकते।(2)
लगते हो...

महिमाशाली इन्द्र देवेश श्रद्धा भक्ति भरा ये हृदय है
तुम इसमें कर लो ना प्रवेश, प्रणत प्रदर्शित प्रार्थियों का अनुनय है।
बारम्बार नमित, चरणों में करो स्वीकार समर्पण।
तेरे दर्शन को लालायित हो रहे हैं हम कितने(2)
लगते हो...

(प्रणत) विनम्र। (उधस) थन। (निनादिनी) ध्वनित करने वाली। (अनुनय) विनती, प्रार्थना।

110. उसके प्रति प्रमाद ना करो

तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे॥

ऋ. १.२५.६

तर्जः *नील कूवड़ मिरनी परयू इन्ने नी किष्टमाणो*

दास हैं हम तुम दाश्वान् हो हम सबका जीवन संभालो
तुम सुखदायक मङ्गलदायक हम सबको अपना बना लो
सुख मिलते नहीं चाहकर भी प्रभुजी दोष हमारे बता दो॥
॥दास हैं हम॥

जानते हम तुम घृतव्रत हो व्रत नियमों को धारण करते
स्वयं यदि हम नियम पे चलते फिर दुःख कष्ट से क्यूँ लड़ते?
बने पात्र हम तेरे ही सच्चे क्यों नहीं आ के मिलते? होऽऽऽ
॥दास हैं हम॥

नर नारी यदि वरुण प्रभु के प्रति करें ना कभी प्रमाद
अप्रमत्त होकर यदि पालें उसके नियम तो होगा प्रकाश
अखण्डित सुख प्राप्त करें हम यही है सच्ची विसात॥ होऽऽऽ
॥दास हैं हम॥

नियम से हम पुरुषार्थ करें तो होंगी पूर्ण इच्छाएँ
शाश्वत सुख के भागी होंगे, होंगी प्रसन्न आत्माएँ
त्यागो प्रमाद और पालो नियम, करो दूर दुःख बाधायें॥ होऽऽऽ
॥दास हैं हम॥

(धृतवत) संसार के सब नियम ओर कार्यों को धारण करना। (दाश्वान्) सब कुछ देने वाले (वरूण प्रभु)

111. अतिथिवत् पूजनीय प्रभु की स्तुति

प्रेष्ठं वो अतिथि स्तुपे मित्रमिव प्रियम्। अग्निं रथं न वेद्यम्

सा.पू. ५, साउ. १२४४, ऋ. ८.८४.१

तर्जः *नी वन्नो तीन कन्नो शृंगार स्वप्नातिल*

हे प्रभो प्रेरणा दो
पाप-दोषों का करो निपतन
अग्नि समान देव परम
कर दो प्रकाशित हृदय, हरो तम
सच्चे सखा मित्र तुम हो भगवन्
हितकारी कर्मों में साथ तुम्हारा
देते हो तुम प्रेरणायें हरदम॥

आपत्ति आये तो करता रक्षण
साथ किसी का ना त्यागे भगवन्
सांसारिक मित्रों से तुम हो विभिन्न
निःस्वार्थ स्नेहों में तुम हो प्रथम
करते हमारा सदा प्रगमन॥

हितकारी कर्मों में साथ तुम्हारा
देते हो तुम प्रेरणायें हरदम
प्राणों से प्रिय अति पूजनीय
लोक लोकान्तर कराते भ्रमण॥

अत्यंत प्रिय अतिथि-आगमन
मन को हमारे करता है प्रसन्न
तेरा हृदय में, आतिथ्य करके
फूले समाये न होंगे हम
तेरे लिये ही है दिव्यासन॥

हितकारी कर्मों में साथ तुम्हारा
देते हो तुम प्रेरणायें हरदम
प्राणों से प्रिय, अति पूजनीय
तेरी स्तुति में आह्लादित
करते हैं तेरा ही आवाहन॥

(तम) अन्धकार (प्रगमन) उन्नति

112. तू जनों की ज्योति है

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥ *ऋ. १. ३६.१८*

तर्जः नी वुरु कादल संगीतम

अग्नि स्वरूप है परमात्मन् मन तुझे करता हृदयङ्गम

जैसे अरणी, मन्थन द्वारा यजमान जलाता
वैसे मन के मन्थन द्वारा भक्त ने हृदय में तुझे प्रकाशा
हृदय में हो जाते उद्‌बुद्ध खिलता प्रकाश, मिट जाता तम,
दिव्य ज्योति-जीवन-पथ पाता, ज्योतिर्मय जीवात्मा सनातन
॥अग्नि स्वरूप॥

सत्य से तुम होते प्रकटित जिससे निर्मल होता मन
जब तक मन दूषित रहता है तब तक मिले ना तेरे चरण।
देवार्चन में सत्य ना हो तो हृदय छाये असत्यावरण
आत्म-प्रवचंना कभी ना करना, व्यर्थ ना जाये ये जीवन।
॥अग्नि स्वरूप॥

जब तुम मेधावी साधक की मनोवेदि में होते हो व्यक्त
सत्याचरण ही इसका कारण ना करते प्रभु भक्त को त्यक्त
भक्त की आत्म-समर्पित-घृत की आहुति से तुम होते सिक्त
अदभ्र ज्योति लिये हृदय में, प्रकाश रूप देते दर्शन॥
॥अग्नि स्वरूप॥

ज्योति-कृषक जो योग के साधक उनको नमस्कार है शतशः
उन कण्वों के स्तुत्य हृदय में अवस्थित होते ज्योतिर्मय
अग्न्याधान-हृदय-वेदी का सदा जगायें मनुष्यपन।
॥अग्नि स्वरूप॥

(अरणी) लकड़ी। (उद्‌बुद्ध) चैतन्य प्रकाशित। (तम) अन्धेरा अन्धकार। (सनातन) प्राचीन काल से आता हुआ। (दूषित) गंदा मैला। (देवार्चन) देवों की पूजा (कण्व) स्तुति करने वाला। (अवस्थित) स्थित, वर्तमान (आत्म-प्रवचना) आत्मा से धोखा या ठगी। (मनोवेदि) मन की यज्ञ स्थली। (व्यक्त) कहा। (त्यक्त) छोड़ा हुआ। (सिक्त) सींचित, सींचा हुआ। (अदभ्र) अत्याधिक, बहुत सा। (कृषक) परिश्रम करने वाला। (अग्न्याधान) अग्नि होत्र, योग यज्ञ।

113. असुर संहारक इन्द्र

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः॥ ऋ. १०.२२.१४

तर्जः नेन्जे नेन्जे उड़न्गी विड़े

करले इन्द्र सबका भला
शुष्णासुर को गिरा
पीड़ित क्यों संसार तेरा
महाअसुरों से इन्हें बचा
किया नहीं गर कर के दिखा

॥कर इन्द्र॥

ये मायावी शोषणकारी
खून ही चूसा करते
दुःखी पीड़ित हैं स्वयं
इनके साथी भी दुराचारी
नृशंस कृत्य करते
भय से छुपते फिरते
भोजन जीवन जन घन प्राण
छीना झपटी करते
जानना चाहें, समझ ना पाये
कौन? क्यूँ? शोषण करते
शचीओं द्वारा ये दुष्कर्मी
आवरण कर लेते हैं खड़ा॥

॥कर इन्द्र॥

ना दुष्टों के पग ना पाणि
असुर कहाँ छुप सकते?
जीवन व्यर्थ वो करते
दुष्ट तो है केवल मायावी
आडम्बर ही करते
निराधार जो रहते
छिपे हुई शोषक शुष्णासुर

विस्तृत चाहे होलें
विश्व व्यापी शोषण करले
कितना ही दम भर लें
कल्याणकारी इन्द्र तो पल में
फोड़ देते पाप-भरा घड़ा॥ ॥कर इन्द्र॥

(शुष्णासुर) शोषणकर्ता राक्षस। (मायावी) जादुगरी से जीवन चलाने वाले। (दुराचारी) बुरे चाल-चलन का। (शोषक) नाश करने वाला। (नृषंस) निर्दयी, अत्याचारी। (आवरण) आच्छादन, परदा। (आडम्बर) दोंग। (कृत्य) कार्य।

114. इन्द्र को सोमरस का अर्पण

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति॥

ऋ. १०.१६०.३

तर्जः *नेन्जे नेन्जे उड़न्गी बिड़े*

भीने भी नयन मेरे, तेरी भक्ति को तरसें
जनम जनम से प्यासा रहा
मन में जगाई प्रीति-श्रद्धा
ध्यान किया मैने प्रभु-भजन से
भीने भीने...

तेरे भजन संग ध्यान लगाया
और अनुराग बढ़ाया
हृदय से मुझे अपनाया
जन-सौहार्द्र विनम्रता प्रीति
और सद्भाव जगाया
वीरता-धीरता लाया
इन गुणों को तुझसे मैं पा के
धन्य हुआ हूँ प्रभु मैं
तुम ही तो हो जो सात्विक हृदय में
उमङ्ग तरङ्गे पैदा करते

भक्तों के इन सद्गुणों को निहारते
खुद को उमङ्गों में शामिल करते...

भीने भीने...

मुझको तुम से जोड़ने वाली है,
वस्तु प्रकाश की किरणें
आती हैं आनन्द भरने
तुमसे मिलने वाली रश्मियाँ,
आई है सोम रससे जुड़ने
प्रेम विभोर मन करने
धारा प्रवाहित सोम रसों की,
प्रभु से लगी हैं मिलने
जिससे साक्षातकार हो जाए,
छूटें जग-बन्धन से
चारु-प्रशस्त बना दो हे इन्द्र!
देव काममय उत्तम स्वर से

भीने भीने...

(सौहार्द्र) मित्रता (रश्मियाँ) किरणें

115. सत्य की खोज

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचती पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरद्दजीय स्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्। *अथर्वः ८.४.१२*

राग-देस *ऋः ७.१०४.१२*

तर्जः *नैना पूनैना पूसी नैना पू अरणिदे चलुविन्दा*

बहने दूँ बहने दूँ सत्य बहने दूँ
बहने दूँ सत्य गंगा
रहूँ ना झूठ में अन्धा
प्रभु सत्य पाठ पढ़ा दे
सत्यशील मुझे बना दे॥ बहने दूँ...
मैं सत्य, विवेक से जानूँ
हर सत्य हृदय से मानूँ
प्रभु सत् हैं ये ना भूलूँ
प्रभु माँ है सत्य भामा
है पिता जो लगे सुहाना
बसता है सदा ही मन में
बनके संगी
चिर संगी
सत्य सन्धी
निज अङ्गी॥ बहने दूँ...
मेरी आत्मा बने ना अवधू
जानूँ सत्यासत्य को हे प्रभु!
दो बल हमें सत्यशील बनें
दो प्रज्ञा में प्रबलता
दो सत्य-निष्कपटता
तेरे सोम सरोवर का
बनूँ अरविन्द
बनूँ मकरन्द
लूँ आनन्द!
हे सच्चिदानन्द! बहने दूँ...

(सत्य संधी) सत्यवादी। (अवधू) डावाँडोल। (अरविन्द) कमल। (मकरन्द) भ्रमर।

❑❑❑

''ओउम्''

ओं इन्द्राय साम गायत (साम. 388)

ईश्वर प्राप्त के लिए साम गान करो।

शुभकामना संदेश

परम पिता परमात्मा ने यह सुन्दर संसार बनाया, जो अहर्निश हम पर सुखों की वर्षा कर रहा है, जिसकी कृपा से हमें सब कुछ प्राप्त हो रहा है। उसके अनन्त उपकारों को स्मरण करते हुए, भक्ति में डूबर उसकी महिमा के गीत अथवा भजन गाने से मानव का जीवन पवित्र होता है, और यह आनन्द सागर में डुब जाता है।

प्रभु भक्ति या उपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन है—संगीत और भजन। जब हृदय भक्ति से भरा हो, उस समय आत्मा से फूटने वाले भक्ति के स्वर सम्पूर्ण वातावरण को आनन्दमय कर देते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के द्वारा ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। चारों वेदों में प्रभु ने एक ''सामवेद'' की रचना की, जिसे गायन का वेद कहा जाता है। इसमें स्थान-स्थान पर गायत, उद्गायत, संगायत, विगायत कह कर ईश्वर भक्ति के गीत गाने का उपदेश किया।

मीरा, रसखान, तानसेन, गोस्वामी, तुलसीदास, रहीम, कबीर, संत तुकाराम आदि भक्त कवियों ने प्रभु भक्ति के गीतों मं संसार को अमृत बांटा। आर्य जगत में भी अनेक कवि हुए जिन्होंने उत्मोजन भजनों की रचना की। जिन्हें गाकर और सुनकर श्रोता आज भी आत्मविभोर होते हैं।

इन्हीं संगीतज्ञों में मैं सम्मान के साथ श्री ललित साहनी का नाम लेना चाहूँगी। दो वर्ष पूर्व, गाँधीधाम के ''जीवन प्रभात'' में आपसे भेंट हुई, आप वहाँ बच्चों को संगीत सिखा रहे थे। जब मैंने वेद मंत्रों पर आधारित उनकी स्वचरित रचनाओं को सुना तो हृदय आनन्द विभोर हो गया।

आर्य संस्कारों में पालित, पोषित और दीक्षित श्री ललित साहनी अपनी काव्य कला व संगीत के माध्यम से प्रभु भक्ति, देश भक्ति, समाज सुधार, महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज आदि पर अनेकों गीत लिखकर व संगीत-बद्ध करके समाज पर बहुत बड़ा उपहार किया है। अपने काव्य में परमपिता को समर्पण करते हुए अनन्य भागों में काव्य संग्रह का नाम भी 'सर्म्पण' ही रखा है। उन्होंने मुझे भी अपने काव्य संग्रह के पाँच पुष्प भाग भेंट किए। मैं आनन्द विभोर होकर उन्हें पढ़ती रही। एक-एक रचना व शब्दों का चयन बहुत ही

मनमोहक है। मैं प्रभु से उनकी दीर्घ व स्वस्थ्य आयु की कामना करती हूँ, ताकि वह इसी प्रकार अपने गीतों से व संगीत से जन-जन को भक्ति सागर में मोते लगवाते रहें।

ललित ही के काव्य का यह छठा पुष्प आपके हाथों में आने वाला है। मैं हृदय से उन्हें साधुवाद देती हूँ, उनका अभिनन्दन करते हुए, ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि कल्याण मार्ग की, मोक्ष मार्ग की और मानवता की सेवार्थ उनकी यह यात्रा निर्बाध रूप से चलती रहें।

मंगलाभिलाषी

साध्वी डॉ. उत्तमा यति

वैदिक मिशनरी, अजमेर